हिन्दी त्रैमासिक

वर्ष ३३ अंक २

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म. प्र.)

।।आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

**हिन्दी त्रैमासिक**

अप्रैल-मई-जून

✱ १९९५ ✱

प्रबन्ध-सम्पादक

**स्वामी सत्यरूपानन्द**

सम्पादक **स्वामी विदेहात्मानन्द**

व्यवस्थापक **स्वामी त्यागात्मानन्द**

वार्षिक १५/- | वर्ष ३३ अंक २ | एक प्रति ५/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२५ वर्षों के लिए) २००/-

**रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम**

**रायपुर - ४९२ ००१ (म.प्र.)**

दूरभाष : २५२६९, २४९५९, २४११९

# अनुक्रमणिका




मुद्रक . संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरग नगर, रायपुर

कम्पोजिग  वर्ल्ड लेजर ग्राफिक्स  विवेकानंद आश्रम, रायपुर

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा से अनुप्राणित

**हिन्दी त्रैमासिक**

वर्ष ३३) | अप्रैल-मई-जून **१९९५** | (अंक २

## अनित्यता का बोध

**रम्याश्चन्द्र-मरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तःस्थली**
**रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ।**
**कोपोपाहित-बाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं**
**सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः ।।**

चन्द्रमा की किरणें मनोहारी हैं, हरे-भरे घासों से परिपूर्ण वनप्रान्त रमणीय है, साधु-समागम से उत्पन्न होनेवाला सुख तथा काव्यग्रन्थों की कथाएँ रम्य हैं; प्रेमकोप से प्रिया के मुखमण्डल पर उभर आनेवाले स्वेदबिन्दु भी मधुर हैं । परन्तु चित्त में इन वस्तुओं की अनित्यता का बोध उदित हो जाने पर, फिर इनमें से कुछ भी रम्य प्रतीत नहीं होता ।

— भर्तृहरिकृत **'वैराग्यशतकम्'** -७६

# विवेकानन्द के प्रति

*जितेन्द्र कुमार तिवारी*
(रम्भादेवी कुंज, पुरानी बस्ती, कोरबा, म.प्र.)

हे भारत के शान्तिदूत, हे करुणामय आनन्द ।
धन्य हो गयी भारत-माँ, पा तुम्हें विवेकानन्द ।।

उद्‌बोधक हे तुम युवजन के, आशाबिन्दु बने त्रिभुवन के,
उर्जस्वित व्याक्तित्व प्रबल सह,अधिनायक हे जन-गण-मन के;
तवागमन से धर्मजगत की, हुई अधोगति बन्द ।।हे.।।

रामकृष्ण की कृपा-किरण हे, असहायों के नित्य शरण हे,
निर्भयता के पावन पथ पर, चलनेवाले पूत चरण हे;
प्राणवन्त हो गयी तुम्हें पा, यह धरती निस्पन्द ।।हे.।।

संहारक हे असुर-शक्ति के, और प्रचारक ज्ञान-भक्ति के,
दिया आत्मबल का चिरसम्बल,अन्तर में जो निहित व्यक्ति के;
तुम आये तो निम्न भाव सब, स्वतः पड़ गये मन्द ।।हे.।।

प्रखर सूर्य सम अन्धकार में, सगुण मूर्ति ज्यों निराकार में,
सबके स्वाभिमान के पोषक, रहे न पीछे स्वाधिकार में;
नयी चेतना जाग्रत करने, गाये मुक्तक छन्द ।।हे.।।

# अग्नि-मंत्र

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित[1])

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

ग्रीष्मकाल,
१८९४

प्रिय शशि,

तुम्हारे पत्रों से सब समाचार विदित हुए। बलराम बाबू की स्त्री का शोक-सवाद पढकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। प्रभु की इच्छा ! यह कार्यक्षेत्र है, भोगभूमि नही, काम हो जाने पर सभी घर जायँगे - कोई आगे, कोई पीछे। फ़कीर चला गया है, प्रभु की इच्छा ! श्रीरामकृष्ण महोत्सव बड़ी धूमधाम से समाप्त हुआ, यह अच्छी बात है। उनके नाम का जितना ही प्रचार हो, उतना ही अच्छा। परन्तु एक बात याद रखो – महापुरुष शिक्षा देने के लिए आते हैं, नाम के लिए नहीं; परन्तु उनके चेले उनके उपदेशो को पानी में बहाकर नाम के लिए विवाद करने लग जाते हैं – बस, यह ससार का इतिहास है।

लोग उनका नाम लें या न लें, इसकी मुझे जरा भी परवाह नहीं, लेकिन उनके उपदेश, उनका जीवन और शिक्षाएँ जिस उपाय से भी संसार में प्रचारित हो, उसके लिए प्राणों का बलिदान तक करने के लिए मैं प्रस्तुत रहूँगा। मुझे अधिक भय पूजागृह का है। पूजागृह की बात बुरी नहीं, परन्तु उसी को यथासर्वस्व समझकर पुराने ढर्रे के अनुसार काम कर डालने की जो एक वृत्ति है, उसी से मैं डरता हूँ। मैं जानता हूँ, वे क्यों पुरानी जीर्ण अनुष्ठान-पद्धतियों को लेकर इतना व्यस्त हो रहे हैं। उनकी अन्तरात्मा उत्कटता से काम चाहती है, किन्तु बाहर जाने का कोई दूसरा रास्ता न होने से वे अपनी सारी शक्ति घण्टी हिलाने जैसे कामों में गँवा रहे हैं।

तुम्हें एक नयी युक्ति बताऊँ। अगर इसे कार्यान्वित कर सको, तो समझूँगा कि तुम सब 'आदमी' हो और काम के योग्य हो। सब मिलकर एक सगठित योजना बनाओ। कुछ कैमरे, कुछ नक्शे, ग्लोब, कुछ रासायनिक पदार्थ आदि की आवश्यकता है। फिर तुम्हें एक बडे मकान की जरूरत है। इसके बाद कुछ गरीबो को इकट्ठा कर लेना है। इसके बाद उन्हें ज्योतिष, भूगोल आदि के चित्र दिखलाओ और उन्हें श्रीरामकृष्ण परमहस के उपदेश सुनाओ। किस देश मे क्या क्या घटित हुआ और क्या क्या हो रहा है, यह दुनिया क्या है, आदि बातो पर जिससे उनकी ऑखे खुलें, ऐसी चेष्टा करो। वहाँ जितने गरीब अनपढ़ रहते हो, सुबह-शाम या किसी समय भी

---

१. यह पत्र मठ के सब गुरुभाइयो के लिए लिखा गया था ।

उनके घर जाकर उन्हें इसकी जानकारी दो। पोथी-पत्रों का काम नहीं – जबानी शिक्षा दो। फिर धीरे धीरे अपने केन्द्र बढ़ाते जाओ – क्या यह कर सकते हो ? या सिर्फ घण्टी हिलाना ही आता है ?

तारक दादा की बातें मद्रास से सब मालूम हो गयीं। वहाँ के लोग उनसे बहुत प्रसन्न हैं। तारक दादा, तुम अगर कुछ दिन मद्रास में जाकर रहो, तो बडा काम हो। परन्तु वहाँ जाने के पूर्व इस कार्य का श्रीगणेश कर जाओ। स्त्री-भक्त जितनी हैं, क्या विधवाओं को शिष्या नहीं बना सकतीं ? और क्या तुम लोग उनके मस्तिष्क में कुछ विद्या नही भर सकते ? इसके बाद क्या उन्हें घर घर में श्रीरामकृष्ण का उपदेश देने और साथ ही पढ़ाने-लिखाने के लिए नहीं भेज सकते ?

आओ ! तन-मन से काम में लग जाओ। गप्पें लड़ाने और घण्टी हिलाने का जमाना गया मेरे बच्चे, समझे ? अब काम करना होगा। जरा देखूँ भी, बंगाली के धर्म की दौड़ कहाँ तक होती है। निरजन ने लाटू के लिए गर्म कपडे माँगे हैं। यहाँवाले गर्म कपड़े यूरोप और भारत से मँगाते हैं। जो कपड़े यहाँ खरीदूँगा, वही कलकते में चौथाई कीमत में मिलेंगे। नहीं मालूम कि कब यूरोप जाऊँगा। मेरा सब कुछ अनिश्चित है – यहाँ किसी तरह चल रहा है, बस, इतना ही जानना काफी है।

यह बड़ा मजेदार देश है। गर्मी पड़ रही है, – आज सुबह बगाल के वैशाख जैसी गर्मी थी, तो अभी इलाहाबाद के माघ जैसा जाड़ा। चार ही घण्टे में इतना परिवर्तन ! यहाँ के होटलों की बात क्या लिखूँ ? न्यूयार्क में एक होटल है, जहाँ ५००० रुपये तक रोजाना एक कमरे का किराया हैं। खाने का खर्च अलग ! भोग-विलास के मामले में ऐसा देश यूरोप में भी नहीं है। यह देश निस्सन्देह ससार में सबसे धनी हैं – रुपये पानी की तरह खर्च होते हैं। मैं शायद ही कभी किसी होटल में ठहरता हूँ, प्रायः मैं यहाँ के बडे बड़े लोगों के अतिथि के रुप में ही ठहरता हूँ। उनके लिए मैं एक बहुपरिचित व्यक्ति हूँ। प्रायः अब देश भर के आदमी मुझे जानते हैं। अतः जहाँ कहीं जाता हूँ, लोग मुझे खुले हृदय से अपने घर में अतिथि बना लेते हैं। शिकागो में भी हेल का घर मेरा केन्द्र हैं, उनकी पत्नी को मैं माँ कहता हूँ, उनकी कन्याएँ मुझे दादा कहती हैं, ऐसा महापवित्र और दयालु परिवार मैंने दूसरा नहीं देखा। अरे भाई, अगर ऐसा न होता, तो इन पर भगवान की ऐसी कृपा कैसे होती ? कितनी दया है इन लोगों में ! अगर खबर मिली कि एक गरीब फलाँ फलाँ जगह कष्ट में पड़ा हुआ है, तो बस, ये स्त्री-पुरुष चल पडेंगे, उसे भोजन और वस्त्र देने के लिए, किसी काम में लगा देने के लिए। और हम लोग क्या करते हैं!

ये लोग गर्मियों में घर छोड़कर विदेश अथवा समुद्र के किनारे चले जाते हैं। मैं भी किसी जगह जाऊँगा, परन्तु अभी स्थान तय नहीं किया हैं। बाकी सब बातें जिस तरह अंग्रेजों में दीख पडती हैं, वैसी ही यहाँ भी हैं। पुस्तकें आदि हैं सही, पर कीमत बहुत ज्यादा है। उसी कीमत पर कलकते में इसकी पाँच गुनी चीजें मिलती हैं अर्थात् यहाँवाले विदेशी माल यहाँ आने नहीं देना चाहते। ये अधिक महसूल लगा देते हैं, इसीलिए सब चीजें बहुत ही महँगी बिकती हैं। और यहाँवाले वस्त्रादि का उत्पादन नहीं करते – ये कल-औजार आदि बनाते हैं और गेंहूँ, रूई आदि पैदा करते हैं, यही यहाँ सस्ते समझो।

यहाँ फल कई प्रकार के मिलते हैं – केले, सन्तरे, अमरूद, सेव, बादाम, किशमिश, अगूर खूब मिलते हैं। इसके अलावा बहुत से फल कैलिफोर्निया से आते हैं। अनानास भी बहुत हैं, परन्तु आम, लीची आदि नहीं मिलते। एक तरह का साग है, उसे 'स्पिनाक' (spinach) कहते हैं, जिसे पकाने पर हमारे देश के चौराई के साग की तरह स्वाद आता है, और एक दूसरे प्रकार का साग, जिसे ये लोग 'एस्पेरेगस' (asparagus) कहते हैं, वहाँ हमारे यहाँ के ठीक मुलायम 'डेंगो' (मर्सा) के डंठल की तरह लगता है, परन्तु उससे हमारे यहाँ की चच्चड़ी यहाँ नहीं बनायी जा सकती। उड़द या दूसरी कोई दाल यहाँ नहीं मिलती, यहाँवाले उसे जानते तक नहीं। खाने में यहाँ भात, पावरोटी की विभिन्न किस्में मिलती हैं।

यहाँवालों का खाना फ्रांसीसियों का सा है। यहाँ दूध मिलेगा, दही कभी-कभी मिलेगा, पर मट्ठा आवश्यकता से अधिक मिलेगा, क्रीम सदा हर तरह के खाने में इस्तेमाल की जाती है। चाय में, कॉफी में सब तरह के खाने में वही क्रीम – मलाई नहीं – कच्चे दूध की बनती है। और मक्खन भी है, और बर्फ का पानी – जाड़ा हो, चाहे गर्मी, दिन हो या रात, जुकाम हो, चाहे बुखार आये – यहाँ बर्फ का पानी खूब मिलता है। ये विज्ञानवेत्ता मनुष्य ठहरे, बर्फ का पानी पीने से जुकाम बढ़ता है, सुनकर हँसते हैं। इनका कहना है कि इसे जितना ही पियो, उतना ही अच्छा है। और आइसक्रीम की बात मत पूछो, तरह-तरह के आकार की बेशुमार। नियाग्रा ईश्वर की इच्छा से सात-आठ दफे तो देख चुका। निस्सन्देह बड़ा सुन्दर है, परन्तु जितना तुमने सुना है, उतना नहीं। एक दिन जाड़े में 'अरोरा बोरियालिस' (aurora borealis)[१] का भी दर्शन हुआ था।

१ Aurora Borealis – पृथ्वी के उत्तरी भाग मे रात के समय (वहाँ लगातार छः महीने तक रात होती है) कभी कभी आकाश-मंडल में एक तरह का कम्पमान विद्युत्-आलोक दीख पड़ता है। कितने

सब बच्चों जैसी बातें हैं। मेरे पास इन जीवन में कम से कम ऐसी बातों के लिए समय नहीं है। दूसरे जन्म में देखा जायगा कि मैं कुछ कर सकता हूँ या नहीं। योगेन शायद अब तक पूरी तरह से अच्छा हो गया होगा। मालूम होता है, सारदा का बेकार घूमने का रोग अभी तक दूर नहीं हुआ। आवश्यकता है संघटन करने की शक्ति की, मेरी बात समझे ? क्या तुममें से किसी में यह कार्य करने की बुद्धि है ? यदि है, तो तुम कर सकते हो। तारक दादा, शरत् और हरि भी यह कार्य कर सकेंगे । .. में मौलिकता बहुत कम है, परन्तु है बड़े काम का और अध्यवसायशील, जिसकी बड़ी जरूरत है। सचमुच वह बड़ा कारगुजार आदमी है। हमें कुछ चेले भी चाहिए – वीर युवक – समझे ? दिमाग के तेज और हिम्मत के पूरे, यम का सामना करनेवाले, तैरकर समुद्र पार करने को तैयार – समझे ? हमें ऐसे सैकड़ों चाहिए – स्त्री और पुरुष, दोनों जी-जान से इसी के लिए प्रयत्न करो। जिस किसी तरह से भी चेले बनाओ और हमारे पवित्र करनेवाले साँचे में डाल दो।

परमहसदेव नरेन्द्र को ऐसा कहते थे, वैसा कहते थे और इसी तरह की अन्य बकवास-भरी बातें 'इंडियन मिरर' से कहने क्यों गये ? परमहसदेव को जैसे और कुछ काम ही नहीं था, क्यों ? केवल दूसरे के मन की बात भाँपना और व्यर्थ की करामाती बातें फैलाना। सान्याल आया-जाया करता है, यह अच्छी बात है। गुप्त को तुम लोग पत्र लिखना, तो मेरा प्यार कहना और उसकी खातिरदारी करना। धीरे धीरे सब ठीक हो जायगा। मुझे अधिक पत्र लिखने का विशेष अवकाश नहीं मिलता। जहाँ तक व्याख्यान आदि का प्रश्न है, उन्हें लिखकर नहीं देता। केवल एक बार व्याख्यान लिखकर पढ़ा था, जो तुमने छपाया है। बाकी सब, खड़ा हुआ और कह चला – गुरुदेव मुझे पीछे से प्रेरित करते रहते हैं। कागज-कलम का कोई काम नहीं। एक बार डिट्रॉएट में तीन घंटे लगातार व्याख्यान दिया। कभी कभी मुझे स्वय ही आश्चर्य होता है कि 'बेटा तेरे पेट में भी इतनी विद्या थी !!' यहाँ के लोग बस कहते हैं, पुस्तक लिखो; जान पडता है, अब कुछ लिखना ही पडेगा। परन्तु यही तो मुश्किल है, कागज-कलम लेने की कौन परेशानी मोल ले।

हमें समाज में – संसार में, चेतना का सचार करना होगा। बैठे बैठे गप्पें लड़ाने और घंटी हिलाने से काम न चलेगा। घटी हिलाना गृहस्थो का काम है। तुम लोगों का काम है विचार-तरगो का प्रसार करना। यदि यह कर सकते हो, तब ठीक है।

---

ही आकार और कितने ही रंगों का होना है। इसी को 'अरोरा बोरियालिस' कहते हैं।

चरित्र गठित हो जाय, फिर मैं तुम लोगों के बीच आऊँगा, समझे ? हमें दो हजार बल्कि दस हजार, बीस हजार संन्यासी चाहिए, स्त्री-पुरुष, दोनो। हमारी माताएँ क्या कर रही हैं ? हमें, जिस तरह भी हो, चेले चाहिए। उनसे जाकर कह दो और तुम लोग भी अपनी जान की बाजी लगाकर कोशिश करो। गृहस्थ चेलों का काम नहीं, हमें त्यागी चाहिए, समझे ? तुममें से प्रत्येक सौ सौ चेले बनाओ – शिक्षित युवक चेले, मूर्ख नहीं – तब तुम बहादुर हो। हमें उथल-पुथल मचा देनी होगी। सुस्ती छोडो और कमर कसकर खड़े हो जाओ। मद्रास और कलकत्ते के बीच में बिजली की तरह चक्कर लगाते रहो। जगह जगह केन्द्र खोलो और चेले बनाते जाओ। स्त्री-पुरुष, जिसकी भी इच्छा हो, उसे संन्यास-धर्म में दीक्षित कर लो, फिर मैं तुम लोगों के बीच आऊँगा। आध्यात्मिकता की बड़ी भारी बाढ़ आ रही है – साधारण व्यकित महान बन जायेंगे, अनपढ़ उनकी कृपा से बड़े बड़े पंडितों के आचार्य बन जायेगे – **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।** – उठो, जागो और जब तक लक्ष्य तक न पहुँच जाओ, न रुको। सदा विस्तार करना ही जीवन है और सकुचन मृत्यु। जो अपना ही स्वार्थ देखता है, आरामतलब है, आलसी है, उसके लिए नरक में भी जगह नहीं है। जीवों के लिए जिसमें इतनी करुणा है कि वह खुद उनके लिए नरक में भी जाने को तैयार रहता है– उनके लिए कुछ कसर उठा नहीं रखता, वही श्रीरामकृष्ण का पुत्र है – **इतरे कृपणाः** – दूसरे तो हीन बुद्धिवाले हैं। जो इस आध्यात्मिक जागृति के संधिस्थल पर कमर कसकर खड़ा हो जायेगा, गाँव गाँव, घर घर उनका संवाद देता फिरेगा, वही मेरा भाई है, वही उनका पुत्र है। यही कसौटी है – जो रामकृष्ण के पुत्र हैं, वे अपना भला नहीं चाहते, वे प्राण निकल जाने पर भी दूसरों की भलाई चाहते हैं – **प्राणात्ययेऽपि परकल्याणचिकीर्षवः।** जिन्हें अपने ही आराम की सूझ रही है, जो आलसी हैं, जो अपनी जिद के सामने सबका सिर झुका हुआ देखना चाहते हैं, वे हमारे कोई नहीं। समय रहते वे हमसे पहले ही अलग हो जायँ, तो अच्छा। श्रीरामकृष्ण के चरित्र, उनकी शिक्षा एव उनके धर्म को इस समय चारो ओर फैलाते जाओ – यही साधन है, यही भजन है, यही साधना है, यही सिद्धि है। उठो, उठो, बड़े जोरो की तरंग आ रही है, आगे बढो, आगे बढो, स्त्री, पुरुष, चाडाल तक सब उनके निकट पवित्र हैं। आगे बढ़ो, आगे बढो। नाम के लिए समय नहीं है, न यश के लिए, न मुक्ति के लिए, न भक्ति के लिए समय है, इनके बारे में फिर कभी देखा

जायगा। अभी इस जन्म में उनके महान चरित्र का, महान जीवन का, महान आत्मा का अनन्त प्रचार करना होगा। काम केवल इतना ही है, इसको छोड़ और कुछ नहीं। जहाँ उनका नाम जायेगा, कीट-पतंग तक देवता हो जाएँगे, हो भी रहे हैं, तुम्हारे तो आँखें हैं क्या इसे नहीं देखते ? यह बच्चों का खेल नहीं, न यह बुजुर्गी छाँटना है, यह मजाक भी नहीं – **उत्तिष्ठत जाग्रत** – 'उठो, जागो' – प्रभु, प्रभु। वे हमारे पीछे हैं। मैं और लिख नहीं सकता – आगे बढ़ो। केवल इतना ही कहता हूं कि जो कोई भी मेरा यह पत्र पढेगा, उन सबमें मेरा भाव भर जायगा। विश्वास रखो। आगे बढ़ो। हे भगवान ! मुझे ऐसा लग रहा है, मानो कोई मेरा हाथ पकड़कर लिखा रहा है। आगे बढ़ो – प्रभु ! सब वह जायेंगे – होशियार – वे आ रहे हैं। जो जो उनकी सेवा के लिए – नहीं, उनकी सेवा नहीं, वरन् उनके पुत्र – दीन-दरिद्रों, पापियों-तापियों, कीट-पतंगों तक की सेवा के लिए तैयार रहेंगे, उन्हीं के भीतर उनका आविर्भाव होगा। उनके मुख पर सरस्वती बैठेंगी, उनके हृदय में महामाया माशक्ति आकर विराजित होंगी। जो नास्तिक हैं, अविश्वासी हैं, किसी काम के नहीं हैं, दिखाऊ हैं, वे क्यों अपने को उनके शिष्य कहते हैं ? वे चले जायँ।

मैं और नहीं लिख सकता।

सस्नेह,

**विवेकानन्द**

# पर उपदेश कुशल बहुतेरे

***स्वामी आत्मानन्द***

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयो पर विचारोत्तेजक तथा उद्‌बोधक लेख लिखे थे, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख 'आकाशवाणी' रायपुर से साभार गृहीत है। – स.)

गोस्वामी तुलसीदासजी की एक चौपाई का लोग काफी हवाला देते हैं – 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे'। इसका सरल अर्थ है – ''दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं, पर ऐसे लोग अधिक नहीं है जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं।'' जिस सन्दर्भ में गोस्वामीजी ने यह बात कही है, वह हम पर भी घटता है। रावण अपने पुत्र मेघनाद का वध सुनकर मूर्छित हो जाता है। जब उसकी मूर्छा टूटती है, तो अपनी स्त्रियों को विलाप करते देखता है। तब रावण जाकर उनको ससार की विनश्वरता का उपदेश देता है। गोस्वामीजी इसी सन्दर्भ में वह चौपाई लिखते हैं, जिसकी चर्चा मैंने प्रारम्भ में की।

हम भी दूसरों को उपदेश देने के लिए कदम बढ़ाये रखते हैं, पर अपनी नसीहत का लाभ हम स्वयं नहीं उठा पाते। इस सन्दर्भ में एक घटना याद आती है। भिलाई में वह घटी थी। बच्चों के स्कूल से लौटने का समय हो गया था। इतने मे एक ने आकर एक घर में सूचना दी कि 'उनके यहाँ का लडका दुर्घटनाग्रस्त हो गया है और दुर्घटना में उसके प्राणपखेरू उड़ गये हैं। पोस्टमार्टम के बाद उसका शव लाया जा रहा है। परिवार पर तो कहर छा गया। माता शोकावेग में मूर्छित हो गयी। होश आने पर छाती पीट-पीटकर रोने लगती। पड़ोसिनें आकर तरह-तरह से समझाने लगीं। कहने लगीं – ''बहिन, धीर धरो, अपने दूसरे बच्चों को देखो। भगवान ने दिया था, उसी ने ले लिया'' – आदि आदि।

इतने में शव आ गया । लड़के की माँ एकदम उस पर झपट पड़ी। ऊपर की चादर हटाकर वह अपने बच्चे के शव को गोद में लेने ही वाली थी कि एक अचम्भा घट गया। उसने देखा कि लड़का उसका नहीं हैं, बल्कि पडोसिन का है, जो अब तक उसे तरह तरह से समझा रही थी। अब क्या था, दृश्य ही बदल गया। समझानेवाली पड़ोसिन पछाड़ खाकर गिर पड़ी और अब यह माता उसे समझाने लगी।

तात्पर्य यह है कि हमें स्वयं अपनी बात में आस्था नहीं होती। हम दूसरों के सामने तो बड़ी बड़ी बातें कह देते हैं, पर जब हमारे सामने एक छोटी-सी बात को कार्य में उतारने का प्रश्न आता है, तो हम मुकर जाते हैं। जैसे, एक बार मैं अस्वस्थ हो गया। वात ने मेरे पैर को अचल बना दिया। चल नहीं पाता था। लोग बिना माँगे 'प्रिस्क्रिपशन' बताया करते थे। मैं रोग से जितना परेशान नहीं था, उससे अधिक तो इन प्रिस्क्रिपशनदाताओं से हो गया। कोई आयुर्वेदिक नुस्खा बताये, तो कोई होमियोपैथिक, कोई एलोपैथिक तो कोई नेचरोपैथिक। मैने हर प्रिस्क्रिपशन बतानेवाले से पूछा कि उसने क्या स्वयं उस दवा से लाभ उठाया है। पर एक भी ऐसा न मिला, जिसको दवा का खुद का अनुभव रहा हो।

यह हमारी मनोवृत्ति है। यह सहानुभूति प्रकट करने का सबसे सस्ता तरीका है। न टेंट से कुछ जाता है, न इधर उधर जाने में हमारी चप्पल घिसती है। मुँह से बोलकर बस छुट्टी। शायद हमारी इसी मनोवृत्ति को देखकर शायर ने फिकरा कसा होगा- ''मुसीबत का एक एक से बयाँ करना, है यह मुसीबत मुसीबत से ज्यादा !''

मुशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानी 'बड़े भाई साहब' में इस मनोवृत्ति का सुन्दर चित्र खींचा है कि कैसे साल-दर-साल फेल होनेवाला बडा भाई अपने होशियार छोटे भाई को अनावश्यक उपदेश देता रहता है, पतग लड़ाने और कटी पतग के पीछे दौड़ने के खतरे सुनाता रहता है; और उसी समय जब एक पतंग कटकर गिरती है तो स्वयं उसके पीछे पकड़ने के लिए दौड़ लगा देता है।

मतलब यह कि दूसरों को बिना माँगे उपदेश देना न केवल उनका समय बर्बाद करना है वरन् अपना भी। ऐसा करके हम अपने को हल्का बना लेते हैं। यही नहीं, बल्कि कभी कभी हँसी का पात्र भी। हमारे एक परिचित को उनकी इसी आदत के कारण 'उपदेशानन्द' का खिताब ही मिल गया है। लोग उन्हें देखते ही हँसने लगते हैं और वे यदि कोई गम्भीर बात भी कहे, तो भी उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। इसका दोष स्वयं उन पर है।

अतएव हमें ऐसी आदत बनानी चाहिए कि हम वहीं बोलें, जिसका हमें अनुभव है, अपने को व्यर्थ ज्ञानी या दूसरों से ऊँचा दिखाने की कोशिश न करें, दूसरों की वेदना में केवल शाब्दिक सहानुभूति न प्रकट करे, बल्कि सही अर्थों में उनके कुछ काम आने की चेष्टा करें। इससे हमारे चरित्र का विकास सधेगा। ◙

# श्रीरामकृष्ण-वचनामृत-प्रसंग

(उनचासवाँ प्रवचन)

*स्वामी भूतेशानन्द*

(स्वामी भूतेशानन्दजी रामकृष्ण मठ-मिशन, बेलुड़ मठ के महाध्यक्ष हैं । उन्होने पहले बेलुड मठ मे और बाद मे श्रीरामकृष्ण योगोद्यान मठ, काकुडगाछी, कलकत्ता मे 'श्रीरामकृष्ण-कथामृत' पर धारावाहिक रूप से चर्चा की थी। उनके इन्हीं बॅगला प्रवचनो को संग्रहित कर उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता द्वारा, 'श्रीश्रीरामकृष्ण-कथामृत-प्रसंग' के रूप मे प्रकाशित किया गया ह। इस प्रवचन-संग्रह की उपादेयता देखकर हम भी इसे धारावाहिक रूप मे यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। हिन्दी रूपान्तरकार हैं श्री राजेन्द्र तिवारी, जो सम्प्रति श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर मे अध्यापक हैं। -सं.)

## स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर

इस अंश में श्रीरामकृष्ण के साथ श्याम वसु की चर्चा गम्भीर अर्थबोधक है । सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध में Theosophy (थियॉसफी) और हिन्दूधर्म में अनेक बातें हैं। श्याम वसु कहते हैं, ''क्या कोई सूक्ष्म शरीर को दिखा सकता है ? क्या कोई दिखा सकता है कि वह शरीर से बाहर चला जाता है ?''

श्रीरामकृष्ण इतने विवाद में न जाकर कहते हैं, ''जो सच्चे भक्त हैं, उन्हें क्या गरज कि वे तुम्हें यह सब दिखाएँ ?'' अभिप्राय यह कि वे यह सब बाजीगरी नहीं दिखाना चाहते। दिखाने पर भी क्या लोग मान लेगे ? मान वे लोग नहीं चाहते। यह सब इच्छा उनमें नहीं रहती।

श्याम वसु के प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण सक्षेप में स्थूलदेह और सूक्ष्मदेह का भेद कहते है, ''पचभूत को लेकर जो देह है, वही स्थूल देह है। मन, बुद्धि, अहकार और चित को लेकर सूक्ष्म शरीर है। जिस शरीर से ईश्वर का आनन्द मिलता है और ईश्वर से सम्भोग किया जाता है, वह कारण शरीर है।''

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश – इन पाँच उपादानों से बना हुआ पचभौतिक देह स्थूल देह है। मन, बुद्धि, अहकार और चित्त – यह सूक्ष्म शरीर है। श्रीरामकृष्ण ने यहाँ पर सक्षेप में कहा। अन्यत्र कहा गया है, सप्तदश अवयव – विशिष्ट जो शरीर है, वह सूक्ष्म शरीर है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि – ये सत्रह सूक्ष्म शरीर के अग हैं।

सूक्ष्म शरीर का मतलब – बहुत छोटा, स्वच्छ अथवा हवा के समान होगा – ऐसा नहीं। जिसके उपादान इन्द्रियों के लिए अगोचर हैं, उसे सूक्ष्म शरीर कहा गया है। जिसे इन्द्रियों के द्वारा नहीं देखा जा सकता, उसे कैसे जाना जाता है ?

शास्त्र कहते हैं कि ये सब योगियों के लिए ज्ञानगम्य है। वे देख सकते हैं और बता सकते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि स्थूल नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि के बिना सूक्ष्म शरीर को नहीं समझा जा सकता। 'सूक्ष्म' कहने का तात्पर्य हम यह समझते हैं कि जो बहुत शक्तिशाली अणुवीक्षण यत्र के द्वारा देखा जा सकेगा। किन्तु यह उससे भी दिखाई नहीं देता। क्योंकि जो प्रत्यक्ष या यन्त्र की सहायता से दिखाई देता है, वह भी स्थूल है। जो इन्द्रियों के द्वारा अथवा किसी यन्त्र के द्वारा दिखाई नहीं देता, उसे सूक्ष्म कहते हैं। स्थूल-सूक्ष्म के सम्बन्ध में यह धारणा स्पष्ट रखने की आवश्यकता है। कई बार कहा जाता है कि मृत्यु के समय हवा के समान या ज्योति के समान निकल गया – मानो कहीं से महाप्राण निकल गया। यह सब प्रचलित लोकोक्ति मात्र हैं।

Christian Science (ईसाई-धर्मविज्ञान) में Spiritualist (अध्यात्मवादी) कहते हैं कि Ectoplasm नामक एक उपादान से सूक्ष्म शरीर बना है। वह इन्द्रियग्राह्य है, किन्तु दिखाई नहीं देता। Photo (फोटो) लिया जा सकता है। हमारी दृष्टि में यह धारणा अशास्त्रीय और निराधार है। स्वामी विवेकानन्द से इस विषय प्रश्न किए जाने पर उन्होंने कहा – वे लोग अनेक तरह की बाजीगरी दिखाते हैं, मैं इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा हूँ। क्योंकि यह सब करने की आवश्यकता भी उन्होंने बोध नहीं की। कई बार लोग जहाँ पर प्रेत का आवाहन करते हैं, वहाँ पर इस तरह की घटना घटती है। प्रेत की आकृति दिखती है, चित्र उतरता है, आदि आदि।

हमारे शास्त्रों के साथ इन सब बातों का मेल नहीं खाता। मन, बुद्धि आदि से जो सूक्ष्म शरीर बना है, उसका क्या चित्र लिया जा सकता है ? जो वस्तु स्थूल है, उसी का फोटो लिया जा सकता है। सूक्ष्म शरीर का उपादान तो उसकी पकड में नहीं आ सकता। इन्द्रियों के परे का ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है। योगियों की दृष्टि अतीन्द्रिय है। इसी दृष्टि के द्वारा इन्द्रियों से अगोचर वस्तु को भी जाना जाता है। किन्तु स्मरण रखना होगा कि सूक्ष्म वस्तु का अर्थ खूब पतला, जल या हवा के समान कुछ नहीं है। भूत के सम्बन्ध में कोई कहता है कि उसने देखा है, कोई कहता है, नहीं देखा है। जिसने नहीं देखा है, उसके मन में हमेशा सन्देह बना रहेगा। और जिसने देखा है, उनके मन में भी भूत के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। अतः जब हम इन सबको लेकर चर्चा करते हैं, तब अतीन्द्रिय वस्तु को

इन्द्रियग्राह्य करने की कोशिश करते हैं। यह एक निष्फल प्रयास मात्र है। किन्तु इसी कारण यह सब अग्राह्य या अज्ञेय नहीं है। इस वस्तु को जानने के लिए योगी की दृष्टि प्राप्त करनी होगी। साधारण लोगों की दृष्टि से काम नहीं चलेगा। गीता में भगवान अर्जुन से कहते हैं –

**दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् (११/८)**

– मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम मेरी ईश्वरीय शक्ति, विभूति माहात्म्य का दर्शन करो।

यह देखना किस प्रकार का देखना है, यह वे ही बता सकते हैं, जिन्होंने देखा है और जो दिखते हैं। दिव्यदृष्टि के बिना मनुष्य किसी भी तरह भगवान का विश्वरूप नहीं देख सकता। श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं – मनुष्य वैसे नहीं देख सकता, तुम मेरे भक्त हो, प्रिय हो, इसलिए तुम्हें दिव्यदृष्टि दिया है। इसके द्वारा देखा। अर्जुन ने देखा, किन्तु क्या वे दूसरों को दिखा सकते हैं ? भगवान की इच्छा होने पर वे दिव्यदृष्टि दे सकते हैं, मनुष्य में यह सामर्थ्य नहीं है। कहा जा सकता है कि व्यासदेव ने तो संजय को दिया था, किन्तु वे कोई साधारण मनुष्य तो थे नहीं । जहाँ मनुष्य की सीमा है, वहाँ वह खुद तो देख नहीं पाता, फिर दूसरों को कैसे दिखाएगा ?

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "जिस शरीर से ईश्वर का आनन्द मिलता है और उनसे सम्भोग किया जाता है, वह कारण शरीर है। तन्त्रों में उसे 'भागवती तनु' कहा है। सबसे अतीत है 'महाकारण' (तुरीय) यह मुख से नहीं कहा जा सकता ।"

यहाँ पर अब शरीर शब्द का प्रयोग नहीं होता। भगवान का ध्यान-चिन्तन सूक्ष्म शरीर से होता है। थोड़ा और आगे बढ़कर उन्होंने कहा, कारण शरीर में आनन्द सम्भोग होता है। 'शरीर' शब्द का हम जिस अर्थ में व्यवहार करते हैं, उस अर्थ में नहीं। वह शरीर हमारी कल्पना के परे है।

मन, बुद्धि, अहंकार का जो शरीर है, उसके क्या हाथ-पैर इत्यादि हैं ? नहीं । इसे थोडा समझना होगा – उसे शरीर इसलिए कहा जाता है कि उसके भीतर भी एक व्यक्तित्व है। जिस व्यक्तित्व के सहारे भगवदानन्द का अनुभव होता है, वह व्यक्तित्व हमारी तरह हाथ-पैर युक्त स्थूल व्यक्तित्व नहीं है। सूक्ष्म व्यक्तित्व – घर-सम्पत्ति आदि किसी शृखला में उसे आबद्ध नहीं रखा जा सकता । श्रीरामकृष्ण ने कई जगह कहा है – गोपियाँ सूक्ष्म शरीर में श्रीकृष्ण के पास जाती थी। भागवत में वर्णित है, एक गोपी को घर में बन्द कर दिया गया, वे उस देह का त्यागकर श्रीकृष्ण के पास चली गयीं। यह है इसकी विशेषता। स्थूल देह में जो अभिमान

रहता है, उसका त्याग करने पर स्थूल देह पड़ा रह जायेगा। उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा। देह में 'मैं' अभिमान रहने तक देह मेरा है। अभिमान त्याग करने पर स्थूल देह हमें रोककर नहीं रख सकेगा। व्यक्तित्व उससे मुक्त हो जाता है। तब वह सूक्ष्म शरीर भगवान के समीप पहुँच जाता है। अतः उस शरीर का अर्थ पंचभौतिक शरीर नहीं है।

भगवदानन्द का अनुभव जिस शरीर के द्वारा होता है, उसे कहते हैं कारण शरीर। कारण शरीर और भी एक ऊँची अवस्था है, सूक्ष्म शरीर से। सूक्ष्म शरीर एक लोक से दूसरे लोक, एक देह से दूसरे देह में जाता है। सूक्ष्म शरीर के सत्रह अवयवों में से कोई भी स्थूल वस्तु नहीं है। कोई भी 'भूत' उनके भीतर नहीं है। इसीलिए वह जो सप्तदश-अवयव-विशिष्ट है, वह लोकान्तर गमन करता है। उसके द्वारा भी भगवदानन्द अनुभव नहीं होता। वह आनन्द और भी सूक्ष्म वस्तु है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते हैं – कारण शरीर के द्वारा भगवदानन्द होता है। यह विभाजन बड़ा ही सुन्दर है, विचार करने योग्य है। और भी कहते हैं – वे सबके अतीत महाकारण हैं, जिनके भीतर कोई व्यक्तित्व, मैं-तुम का भेद नहीं रहता। समस्त भेद, समस्त गुणों से अतीत जो तत्त्व है, वह महाकारण (तुरीय) है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीरामकृष्ण ने यहाँ इसका और अधिक विस्तार नहीं किया। स्थूल, सूक्ष्म, कारण – इन तीन अवस्थाओं से पार चले जाने पर मनुष्य ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। वह तुरीयावस्था है। एक तरह से उसे चौथी अवस्था कहा जाता है, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं कहा जा सकता। तुरीय माने तीन के भीतर नहीं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों के अतीत; स्थूल, सूक्ष्म, कारण, इन तीन अवस्थाओं के अतीत। मुख से कहा नहीं जा सकता।

श्रीरामकृष्ण अब असल विषय की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। साधना की आवश्यकता के सम्बन्ध में कहते हैं, "केवल सुनने से क्या होगा ? कुछ करो भी।" श्याम वसु का प्रश्न सुनकर लगता है कि उनमें जानने का कोई आग्रह नहीं है, केवल तर्क के लिए मानो जानने की इच्छा हो, दूसरों को सुनाकर ख्याति मिलेगी। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "भग भग रटने से क्या होगा ? उससे क्या कभी नशा हो सकता है ? भंग को कूटकर देह में लगाने से भी नशा नहीं होता। थोडा सा खाना चाहिए।" इस सम्बन्ध में उन्होने अन्यत्र भी कहा है, "उस रास्ते पर गये ही नहीं, और कहते हैं कि मुझे समझा दो, मुझे दिखा दो।" साधारण युक्तिवादी लोग बस

यही कहते हैं, दिखा दो तभी मानेंगे। तुम मानो चाहे मत मानो, जो इस रास्ते पर चले हैं, उन्हें क्या गरज पड़ी है तुम्हे दिखाने की ? जानने की इच्छा है तो तुम प्रयत्न करो – वे लोग रास्ता दिखा देंगे – यही शास्त्र का विधान है।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''इसीलिए कहता हूँ, कुछ साधना करो, तब स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण किसे कहते हैं, सब समझ सकोगे। जब ईश्वर से प्रार्थना करोगे तब उनके पादपद्मों मे केवल भक्ति की प्रार्थना करना।'' अन्यत्र कहा है, ''आम खाने आये हो, आम खाते जाओ।'' सचमुच उस वस्तु का आस्वादन करने पर प्राण परिपूर्ण हो जाता है। तत्व का आस्वादन न होने तक मनुष्य हिसाब-किताब, सवाद आदि सग्रह करता रहता है।

श्रीरामकृष्ण अहिल्या का दृष्टान्त देते हैं। उन्होंने श्रीरामचन्द्र से कहा था, ''चाहे मेरा जन्म शूकर योनि में भी क्यों न हो, फिर भी तुम्हारे पादपद्मों में मेरा मन लगा रहे।'' श्रीरामकृष्ण इस प्रसग में और भी कहते है, ''मैंने माँ से केवल भक्ति माँगी थी।'' इस तरह वासनाशून्य होने पर ही भक्ति प्राप्त होती है। प्रार्थना किस तरह करनी होगी, यह वे हमे सिखा रहे हैं।

**'धर्माधर्म शुचि-अशुचि' इत्यादि**

धर्माधर्म के प्रसग में श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''धर्म अर्थात दानादि कर्म। धर्म को लेने से ही अधर्म को लेना होगा, पुण्य को लेने से ही पाप को लेना होगा।'' अच्छा-बुरा, धर्म-अधर्म, शुचि-अशुचि ये सब परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं। एक को लेने से दूसरे को भी लेना होगा। इसीलिए कहते हैं – इन सबका परित्याग करने पर ही तत्व का आस्वादन होता है। जैसा कि उन्होंने पहले कहा – ज्ञान और अज्ञान काँटे हैं – ये दोनो ही भगवान से मार्ग में बाधक हैं। दोनों को फेक देने पर उनका आस्वादन होता है।

अब शुचि-अशुचि के प्रसग में कहते हैं, ''शूकर का मास खाकर भी ईश्वर के चरणो मे यदि किसी की भक्ति रहे, तो वह पुरुष धन्य है। और यदि हविष्य भोजन करके भी ससार मे आसक्ति रही –।'' उनके वाक्य पूरा करने के पहले ही डॉक्टर कहते हैं, ''तो वह अधर्म है,।''

डॉक्टर सरकार ने अब बुद्धदव के निर्वाण के प्रसग मे जो हास्यास्पद व्याख्या है उसका उल्लेख किया। उनका उद्देश्य था गम्भीर भाव को थोडा हल्का करना। श्रीरामकृष्ण भी बीच बीच मे ऐसा किया करते थे।

श्याम बसु गृहस्थ हैं, उनके मन मे सशय है, कि कही ससार ईश्वर के मार्ग

में बाधा न हो। यह प्रश्न बहुतों के मन में उठता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ससार धर्म में दोष नहीं है। किन्तु ईश्वर के पादपद्मों में मन रखकर, कामनाशून्य होकर कर्म करना चाहिये।''

मन को कैसे भाव में रखना होगा, यह फोड़े का दृष्टान्त देकर समझाते हैं। पीठ में फोड़ा हुआ है। सभी काम करता है, किन्तु मन लगा है फोड़े के दर्द की ओर। इसी तरह मन खिंचा रहेगा ईश्वर की ओर, सभी कार्यों की ओर, सब कार्यों के दौरान वही बारम्बार मन में उठेगा। एक अन्तर्प्रवाह चलेगा, भगवान का विस्मरण नहीं होगा। काम-काज देखकर लोगों को आभास नहीं होगा। काम ठीक ही चल रहा है, पर मन लगा हुआ है भगवान की ओर। मन के चचल होने पर भी प्रारम्भिक अवस्था में यह करना पड़ता है। बाद में मन के सम्पूर्ण रूप से उनमें मग्न हो जाने पर हो सकता है कोई काम-काज सम्भव ही नहीं हो। किन्तु वह बहुत दूर की बात है। पहले से ही कहीं हम यह सोच बैठें कि ईश्वर का चिन्तन करने पर संसार का काम-काज कैसे करेंगे, इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते हैं, उनमें मन रखकर सब कार्य किये जा सकते हैं। यहाँ पर जैसे फोड़े का दृष्टान्त दिया, वैसे ही कहीं पर वे दाँत के दर्द का, तो कहीं पर बदचलन स्त्री का दृष्टान्त देते हैं। ये सब ऐसे दृष्टान्त हैं, जो साधारण लोगों की भी समझ में आ जाते हैं।

## थियॉसफी और श्रीरामकृष्ण

श्याम वसु ने फिर से थियॉसफी के सम्बन्ध में प्रश्न उठाया। लगता हैं कि वे बेकार के प्रश्न उठा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण इस पर नाराज न होकर उत्तर देते जा रहे हैं। उन्होंने बताया कि पढ़कर या शास्त्र व्याख्या सुनते समय उन्होने इस विषय में कुछ सुना नहीं। शास्त्र में थियॉसफी नहीं है, यह एक नई लहर है। ठाकुर ने बता दिया कि वे इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। ''जो लोग चेला बनाते फिरते हैं, वे हल्के दर्जे के हैं।'' जो दूसरों को अपने मत में लाकर दल बढाते हैं, वे भी हल्के किस्म के लोग हैं।

अलौकिक शक्तियाँ ईश्वर के मार्ग में कोई सहायता नहीं करतीं, बल्कि बाधास्वरूप होती हैं। ''ऐसे लोगों की ईश्वर में श्रद्धा-भक्ति होना बहुत कठिन है।'' उनके चक्कर में मन बेकार खर्च हो जाता है। इसीलिए ईश्वर मे भक्ति नहीं होती। बेकार की बातों एव विचारों में व्यस्त रहने के कारण भगवच्चिन्तन का अवकाश नहीं मिलता।

एक बार स्वामी विवेकानन्द की ऐसी अवस्था हुई थी कि ध्यान करते करते

वे बहुत दूर की बातें सुन पाते थे। तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ध्यान न करने का निर्देश दिया। इसलिए कि कहीं मन उसी ओर न चला जाय। दूर दूसरे लोग क्या बोल रहे हैं, उसे सुनकर बाद में पता लगाकर स्वामीजी ने देखा कि वह मिल गया। श्रीरामकृष्ण विचार कर रहे हैं – इसके द्वारा क्या भगवान मिलेंगे ? क्या हम ईश्वर की ओर बढ़ेंगे ? क्या इसके द्वारा हम उनका स्वरूप समझ सकेंगे ? यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो फिर इसका मूल्य क्या है ? इसके बाद श्याम वसु कहते हैं, मृत्यु के बाद जीवात्मा कहाँ जाती है, यह थियॉसफी से पता चलता है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''होगा । मेरा भाव कैसा है, जानते हो ? किसी ने हनुमान जी से पूछा, 'आज कौन सी तिथि है ?' हनुमान बोले, 'मैं वार, तिथि, नक्षत्र, यह सब नहीं जानता, मैं तो बस श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया करता हूँ'।'' श्रीरामकृष्ण का यही भाव है, एकमात्र भगवान, को छोड़कर वे और कुछ भी नहीं जानते । जानने की जरूरत ही क्या है ? उनको जान लेने पर मन ऐसा अभिभूत हो जाता है कि और कुछ जानने की इच्छा नहीं रह जाती।

हम लोग जब धर्म की चर्चा करते हैं, तब तरह तरह के विषय जानने की इच्छा होती है। किन्तु भगवान को जानने के सिवा और कुछ भी जानना हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं है। उपनिषद् भी कहते हैं – **तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्यावाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः** (मुण्डक २/२/५) – अन्य विचारों को छोडकर, एकमात्र उन्हें ही जानो। कहॉ नक्षत्रलोक है, वहाँ जाया जा सकता है या नहीं, यह सब जानने से क्या भगवत्प्राप्ति मे सहायता मिलेगी ? विभिन्न प्रकार की अलौकिक शक्तियॉ, विभूतियाँ – वास्तविक अथवा कल्पित, सच अथवा फरेब – जो भी हो, उसके द्वारा जीवन का उद्देश्य क्या सिद्ध होता है ? इसी पर विचार करने से मनुष्य समझ सकता है कि धर्म के साथ इन सबका कोई सम्बन्ध नहीं। धर्म का उद्देश्य है – भगवान को जानना, उनका आस्वादन करना। अलौकिक शक्तियाँ भगवान के पथ पर बाधा बनकर खड़ी हो जाती हैं। वचनामृत में बारम्बार ठाकुर ने यह बात कही है कि ये शक्तियाँ साधक के लिए महा अनिष्टकर हैं। भगवान ने अर्जुन से कहा था – हे अर्जुन, इन विभूतियो में से यदि एक भी किसी केपास रहे तो समझ लो कि वह मुझे नही पा सकता। यह विभूति-ऐश्वर्य साधक के उन्नति का परिचायक है, किन्तु आध्यात्मिक जगत के स्तर का निर्णायक नहीं है, बल्कि अवनति का ही चिह्न है।

इस विषय मे श्रीरामकृष्ण की कुछ आख्यायिकाएँ हैं। एक भक्त से किसी ने पूछा कि इतने दिन तक साधन-भजन करके उन्हें कुछ मिला या नहीं ? भक्त ने कहा, ''किये जा रहा हूँ उनकी कृपा होगी तो होगा।''– ''वह सब बेकार की बातें

हैं, कुछ मिला है या नहीं।'' भक्त न कहा, 'अच्छा तुम्हे मिला है क्या ?' – ''हाँ, मिला है, देखो।'' यह कहकर उसन रास्त पर जा रहे हाथी से कहा, ''मर जा।'' हाथी तुरन्त मर गया। उसने फिर कहा, ''हाथी, तू जीवित हो जा।'' हाथी जी उठा। भक्त थोड़ी देर के लिए स्तब्ध रह गए, फिर बोले, ''हाथी मर गया और जी उठा, इससे तुम्हें क्या मिला ?'' यहाँ बारह वर्ष साधना करके पैदल पानी पर चलकर नदी पार करने की अलौकिक शक्ति प्राप्त करने की कथा भी स्मरणीय है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहते है – यही प्रश्न है। कोई नक्षत्रलोक, कोई चन्द्रलोक काई इन्द्रलोक को जाय, इससे तुम्हें क्या मिला ? जिस मानव देह के द्वारा भगवान की प्राप्ति होती है उसे पाकर लक्ष्यभ्रष्ट होना उचित नहीं। ये सब शक्तियाँ मन को आघ्यात्मिक पथ से भ्रष्ट करके दूसरी ओर ले जाती हैं।

इस तरह के ऐश्वर्य देखने पर श्रीरामकृष्ण भक्तों को सावधान कर देते, अधिक अनुग्रह करने पर उस शक्ति को स्वयं हरण कर लेते, ताकि वह अपने साधना-पथ पर आगे बढ़ सके। उनके पास चन्द्र और गिरिजा आया करते थ। उनके अलौकिक ऐश्वर्य के बारे में ठाकुर बताया करते थे। गिरिजा पीठ से प्रकाश की ज्योति निकाल पाते थे। एक बार शंभु मल्लिक के घर से लौटते समय जब श्रीरामकृष्ण अँधेरे में रास्ता नहीं देख पा रहे थे तो गिरिजा ने उन्हें रुकने को कहकर अपनी पीठ से प्रकाश निकाल कर रास्ते को आलोकित कर दिया था। श्रीरामकृष्ण बड़े आराम से चले गये। उन्होंने बताया था, ''इतना उजाला था कि मैं दक्षिणेश्वर के फाटक तक भलीभाँति देख पा रहा था।''

किन्तु इससे उनके अपने जीवन में क्या लाभ हुआ ? यह शक्ति ही उनके पतन का कारण सिद्ध हुई थी। श्रीरामकृष्ण अपने पार्षदो के समक्ष इन सब की कठोर निन्दा करते हुए बोले थे, ''वह सब कैसा है जानते हो, वेश्या की विष्ठा के समान। माँ ने मुझे दिखा दिया है।'' उन्होंने बारम्बार कहा है, ''वह सब घृण्य वस्तुएँ हैं, उनसे सावधान रहना।''

इसके बाद महात्मा हैं कि नहीं इस प्रश्न के उत्तर मे श्रीरामकृष्ण कहते हैं ''मेरी बात पर विश्वास करो तो है। परन्तु ये सब बातें अभी रहने दो। मेरी तबियत कुछ अच्छी होने पर फिर आना। यदि तुम्हे मुझ पर विश्वास है तो तुम्हारे लिए ऐसा कोई मार्ग निकल आएगा, जिससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। मुख्य प्रश्न यह है कि तुम शान्ति चाहते हो या ऐश्वर्य ? ऐश्वर्य चाहते हो तो अन्यत्र जाओ। अभिप्राय यह है कि मै स्वय अपने रोग को दूर नहीं कर पा रहा हूँ तो तुम्हे क्या दूँगा ? शान्ति

चाहते हो तो आओ, उपाय हो जायगा। रास्ता बता सकूँगा। फिर कहते हैं, ''तुम तो देख ही रहे हो कि मैं धन या वस्त्र की कोई भेंट स्वीकार नहीं करता। यहाँ कोई अन्य चढ़ावा भी नही देना पड़ता, इसीलिए इतने लोग आया करते है।'' आश्वस्त कर रहे है कि कुछ देना नहीं पडेगा।

डॉक्टर से घनिष्ठता अधिक है, इसलिए कहते हैं, ''यदि तुम बुरा न मानो तो तुमसे एक बात कहूँ – यह सब तो बहुत किया – रुपया, मान, लेक्चर – अब कुछ दिन मन को ईश्वर मे लगाओ। और बीच बीच में यहाँ आना, भगवान की बातें सुनकर मन में उद्दीपन होगा !''

यही सार बात है। साधुसग, भगवत्प्रसंग – और वह भी श्रीरामकृष्ण के मुख से जो ईश्वर को छोड़कर कुछ नहीं जानते। वस्तुतः हम लोग ससार के बाह्य विषयों को लेकर ऐसे मत्त रहते हैं कि भगवान की बातें सोचने को समय नहीं मिलता। दैवयोग से यदि ऐसे लोगों से सम्पर्क हो, जो ईश्वर को छोड़ कुछ नहीं जानते, तो वे मानो चुम्बक के समान प्रबल रूप से आकर्षित करते हैं। मन के भीतर ईश्वर को जानने की इच्छा रहे, तो वे इसे सौ गुना बढ़ा देते हैं। उनके प्रभाव से जीवन परिवर्तित हो जाता है। (क्रमशः)

---

दशावतार चरित-७

# भगवान रामचन्द्र

***स्वामी प्रेमेशानन्द***

(श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में अनेक अवतारो पर चर्चा हुई है। इनमें से कुछ पौराणिक है और कुछ ऐतिहासिक। रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी ब्रह्मलीन स्वामी प्रेमेशानन्दजी ने अपनी सुललित बंगला भाषा मे इन्हे 'दशावतार-चरित' नाम से एक पुस्तिका के रूप मे लिखा था, जिसका अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पृष्ठो मे क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।-सं.)

**वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति-कमनीयं**
**दशमुख-मौलि-बलिं रमणीयम्।**
**केशव धृत-रघुपतिरूप**
**जय जगदीश हरे।।**

— १ —

प्रभुत्व को लेकर ब्राह्मण-क्षत्रियों का आपसी विवाद समाप्त हो चुका था। सब लोग समझ गये थे कि धर्मसाधना तथा भगवत्प्राप्ति ही मानव जीवन का

एकमात्र लक्ष्य है। समाज की रक्षा के लिए सम्पूर्ण मानवजाति चार वर्णों में विभक्त हो चुकी थी; सभी वर्ण अपने अपने कार्य को स्वधर्म मानकर श्रद्धापूर्वक सम्पन्न कर रहे थे। समाज में शान्ति विराज रही थी। साधुगण ईश्वर की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या में लगे थे। परन्तु भगवान की कृपा के बिना उनका दर्शन नहीं मिलता; भगवान यदि स्वयं गुरु रूप में धरा पर अवतीर्ण होकर शिक्षा न दें, तो केवल शास्त्र तथा बुद्धि के द्वारा उन्हें पाने का मार्ग नहीं मिल सकता। अतएव मनुष्य व्याकुल होकर भगवान को पुकारने लगे।

पुलस्त्यवंशीय विश्वश्रवा के पुत्र रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण ब्राह्मणोचित शास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त करने के बाद कठोर तपस्या में लग गये। रावण तथा कुम्भकर्ण के मन में भगवत्प्राप्ति की इच्छा न होने के कारण तपस्या के फलस्वरूप उन्हें विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हुईं। शक्तिलाभ के पश्चात वे लंका द्वीप के राजा होकर भोगसुख में दिन बिताने लगे। राक्षसी प्रकृति के सभी लोग उनके पास आ जुटे। धन-जन की दृष्टि से वह सोने की लका हो गई; परन्तु मानव जीवन की सार वस्तु धर्म वहाँ नहीं रहा। रावण अहकार में उन्मत्त होकर सबको तुच्छ समझता था। उसके अनुचरगण भारत में जाकर ऋषि-मुनियों पर अत्याचार करने लगे। दक्षिणी भारत में अत्याचार करते करते वे लोग विन्ध्यगिरि को पार कर उत्तरी भारत के तपस्वी ब्राह्मणों के याग-यज्ञ में भी बाधाएँ उत्पन्न करने लगे। रावण इतना शक्तिशाली था कि उसके भय से कोई भी राजा इस अत्याचार का प्रतिकार नहीं कर सका। असहाय, आर्त, उत्पीड़ित तथा साधुगण की कातर प्रार्थना भगवान तक जा पहुँची।

– २ –

सूर्यवशी महाराज दशरथ भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ राजा थे। उनकी राजधानी अयोध्या आज की किसी भी नगरी की अपेक्षा सौन्दर्य तथा स्वच्छता मे हीन नहीं थी। देव-द्विज के प्रति उनमें अचल भक्ति थी। उपयुक्त समय पर सन्तान न होने से उन्होंने बहुत याग-यज्ञ किये। इसके फलस्वरूप उनके चार पुत्र जन्मे – कौशल्या के गर्भ से राम, सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न और कैकेयी के गर्भ से भरत। राम आयु में बड़े और सौन्दर्य-बल-बुद्धि आदि सब विषयों में श्रेष्ठ थे। छोटे भाई उन्हें खूब मानते थे। उपयुक्त आयु होने पर राजा दशरथ ने उनकी शास्त्र तथा अस्त्र शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। चारों भाई चन्द्रकला की नाईं बढ़ने लगे।

विश्वामित्र मुनि अपनी तपस्या के प्रभाव से सम्पूर्ण भारत में विख्यात थे, परन्तु राक्षणगण अहकार में उन्मत्त हो उनके तपोवन में तरह तरह के उत्पात करने लगे; यहाँ तक कि उनके लिए यज्ञ करना भी कठिन हो गया। विश्वामित्र अपने तपोबल से जान गए कि साधुओं के परित्राण तथा दुष्कर्मियों के विनाश हेतु श्रीहरि दशरथ के घर मानव-शरीर में अवतीर्ण हुए हैं। अतः वे राक्षसों के विनाश हेतु रामचन्द्र को लेने अयोध्या आए। राम तब बालक मात्र थे, परन्तु विश्वामित्र के भय से दशरथ ने अपनी अनिच्छा के बावजूद राम तथा लक्ष्मण को राक्षस-वध के लिए उनके साथ भेजा। राम-लक्ष्मण ने ताडका, सुबाहु आदि राक्षसों का विनाश कर अद्‌भुत शक्ति का प्रदर्शन किया। मायावी मारीच को राम ने एक ऐसा वाण मारा कि वह आकाश में घूमता घूमता सागर में जा पड़ा। तदुपरान्त विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को गौतम मुनि के आश्रम में ले गए। गौतम ने किसी अपराध के कारण अपनी पत्नी को शाप देकर त्याग दिया था। रामचन्द्र के कृपापूर्वक उनका शापमोचन कर देने पर गौतम ने उन्हें पुनः स्वीकार किया। पतितों का उद्धार ही तो अवतार का कार्य है।

मिथिला का राज्य भी समीप ही था। मिथिलानरेश जनक की सीता नाम की एक कन्या थी। राजा जनक ने एक विशाल लौह धनुष बनवाकर यह घोषणा की कि जो भी इस धनुष पर डोरी चढा देगा, वही सीता का पति होगा। अनेक राजा-महाराजा उस धनुष पर डोरी चढ़ाने को आकर लज्जित हो लौट गये थे। लंकेश्वर रावण भी आकर उस धनुष को थोड़ा-सा नवा भर सका था। विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को मिथिला ले गए। उस घनुष पर डोर चढाना तो सामान्य बात थी; राम ने धनुष को नवाकर तोड़ डाला। जनक की दो तथा उनके भाई की दो पुत्रियों के साथ राम आदि चारों भाइयों का विवाह हो गया।

— ३ —

राजा दशरथ अब वृद्ध हो चले थे। अतः राज्यभार उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र राम को सौंपने की इच्छा व्यक्त की। अभिषेक का सारा आयोजन हो गया। सम्पूर्ण राज्य में उत्सव चल रहा था। परन्तु सहसा एक बाधा के कारण सारा आनन्द दारुण शोक में परिणत हो गया।

एक बार दशरथ युद्ध में अत्यन्त घायल हो गए थे। उस समय रानी

कैकेयी के काफी प्रयास से उन्हें आरोग्यलाभ हुआ था। उस समय दशरथ द्वारा उन्हें दो वर देने की इच्छा व्यक्त करने पर कैकेयी ने कहा था कि जब आवश्यकता पड़ेगी तो माँग लेंगी। अब उन्होंने अपने एक वर के द्वारा राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास तथा दूसरे वर से भरत को राजा बनाने की इच्छा प्रकट की। अब सत्य की रक्षा करें या पुत्र की – दशरथ इसका निर्णय करने में असमर्थ होकर बड़े कातर हुए। सुनते ही राम ने सन्यासी का वेश धारण किया और अयोध्या से निकल पड़े। उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी गए। पुत्रशोक में दशरथ का देहावसान हो गया।

भरत उस समय मामा के घर थे। घर लौटकर यह भयानक समाचार पाते ही वे मर्माहत हुए। माता को काफी खरी-खोटी सुनाने के पश्चात वे राम को वापस लाने चले। राज्य की समस्त प्रजा भी उनके साथ राम को लौटा लाने गई। परन्तु राम किसी भी हालत में पिता का वचन भग करने को तैयार नहीं हुए। आखिरकार भरत राम का एक जोडा खड़ाऊ लेकर लौटे। उस खड़ाऊ को सिंहासन पर रखकर वे सन्यासी के वेश में प्रतिनिधि के समान राज्य चलाने लगे।

राम ने पहले तो चित्रकूट पर्वत पर जाकर निवास किया और उसके बाद दण्डकारण्य में जाकर शरभग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि सैकड़ों मुनियो के साथ धर्मचर्चा में दस वर्ष बिताए। मुनिगण उनकी कृपा से ईश्वर का दर्शन पाकर कृतार्थ हुए। तदुपरान्त उन्होंने पंचवटी नामक एक अत्यन्त सुन्दर स्थान में अपने निवास हेतु एक कुटीर का निर्माण किया।

दण्डकारण्य में उन्होंने विराध आदि केवल दो-चार दुष्टो का ही सहार किया। वहाँ कोई विशेष युद्ध नहीं हुआ। शूर्पणखा नामक रावण की बहन ने पंचवटी में आकर राम तथा लक्ष्मण के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। तेजस्वी लक्ष्मण ने नाराज होकर शूर्पणखा के नाक व कान काट लिये। इसी पर उनका रावण के साथ मनोमालिन्य हुआ। रावण एक दिन छद्मवेश में आकर सीता को उठा ले गया।

वन में सीता को खोजते खजते राम-लक्ष्मण की सुग्रीव तथा हनुमान के साथ भेंट हुई। प्रथम दर्शन के बाद से ही सुग्रीव तथा हनुमान राम के बड़े अनुरागी हो गए। सुग्रीव के भाई बालि किष्किन्धा के राजा थे। किसी कारणवश विवाद हो जाने पर बालि ने सुग्रीव को राज्य से बाहर खदेड़ दिया

था। सुग्रीव तभी से हनुमान आदि कुछ मित्रों के साथ वन वन भटक रहे थे। राम के साथ उनकी मित्रता हो गई। राम ने प्रतिज्ञा की कि वे बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाएँगे और सुग्रीव ने प्रतिज्ञा की कि वे सीता की खोज कराकर उन्हें राम के पास पहुँचा देंगे।

राम ने बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बना दिया। सुग्रीव ने भी वानरकुल के सैकडों लोगों को सीता की खोज में चारों ओर भेजा।

काफी तलाश के बाद हनुमान लंका द्वीप गए, सीता को देखा और लौटकर समाचार दिया। फिर राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव ने अपनी वानर सेना के साथ लंका पर आक्रमण कर दिया। वानर दक्षिणापथ की एक पर्वतीय जाति है। वे लोग धनुष के द्वारा युद्ध करना नहीं जानते थे, परन्तु उनके शरीर में प्रचण्ड बल था। वे लोग पत्थर तथा वृक्षों की डाल फेंककर शत्रुओं पर प्रहार करते थे। असंख्य वानरों ने लंका को घेर लिया। विभीषण बड़े धर्मपरायण थे। उन्होंने रावण को राम के साथ सन्धि कर लेने की सलाह दी। रावण इस बात पर बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उसने लात मारकर विभीषण को सभा से बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर विभीषण राम की ओर जा मिले। दस महीनों तक युद्ध होने के बाद रावण के पक्ष में कोई भी पुरूष नहीं बचा। सीता का उद्धार हुआ। विभीषण लंका के राजा हुए।

चौदह वर्ष पूरा हो जाने पर राम अयोध्या लौट आए। अयोध्या में आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। अयोध्या स्वर्ग में परिणत हुआ। अब भी लोग उसे 'रामराज्य' कहते है। जब स्वयं भगवान ही राजा हों, तो वह राज्य ही तो बैकुण्ठ होगा।

— ४ —

परन्तु सुख के साथ दुख भी लगा ही रहता है। दुष्ट लोग कहने लगे, "जो स्त्री एक राक्षस के साथ चली गई थी, राम ने उसे फिर लाकर क्यों पटरानी बना दिया ?" यह बात राम के भी कानों तक पहुँची। राम ने प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिए अपने प्राणों से भी प्रिय सती साध्वी सीता को वाल्मीकि के तपोवन मे भेज दिया। उस समय सीता गर्भवती थीं; तपोवन में उनके दो जुड़वे पुत्र हुए। वाल्मीकि ने उनका नाम लव और कुश रखा। वे बड़े यत्नपूर्वक इनका पालन करते हुए यथाविधि शिक्षा प्रदान करने लगे। वाल्मीकि

मुनि ने राम के बारे में एक काव्य लिखा और लव-कुश को उसे सुरसहित गाना सिखा दिया।

इधर राम ने एक यज्ञ किया और उसी उपलक्ष्य में अयोध्या में एक बड़ा उत्सव हुआ। लव तथा कुश ने राजसभा में रामायण गाकर सबको मुग्ध कर लिया। उन दिनों संगीतकला की इतनी उन्नति नहीं हुई थी। बालकों के मुख से रामायण गायन सुनकर उस समय के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। दोनों बालकों को लेकर हलचल मच गई। उनका परिचय अब छिपा न रह सका। राम ने सीता को वाल्मीकि के तपोवन से बुलवाया। राम का दर्शन करने के पश्चात् सीता समाधियोग से देहत्याग कर चली गई।

एक दिन एक तपस्वी ने आकर राम से कहा कि वे उन्हें एक गोपनीय बात बताना चाहते हैं; परन्तु किसी की उपस्थिति में वह बात नहीं हो सकती; बातचीत के दौरान कोई आ पड़े तो यदि राम उसका वध या त्याग करने को राजी हों, तभी तपस्वी अपनी बात कहेंगे। राम इस पर सहमत हुए और लक्ष्मण को पहरे पर नियुक्त कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश महाक्रोधी दुर्वासा मुनि ने उसी समय आकर राम से मिलने की इच्छा व्यक्त की। बडी समस्या थी। दुर्वासा को नाराज किया गया तो हो सकता है कि वे राज्य भर को शाप दे दें। अतः 'अपने को जो होना है हो' – यह सोचकर लक्ष्मण तपस्वी की बात पूरी होने के पूर्व ही राम के सम्मुख जा पहुँचे। अतः राम लक्ष्मण का परित्याग करने को बाध्य हुए। लक्ष्मण सरयू नदी में प्रविष्ट होकर समाधियोग से बैकुण्ठ चले गए।

सीता और लक्ष्मण के शोक में राम, भरत तथा शत्रुघ्न सभी ने मानव-देह त्याग दिया। अयोध्या के लोगों का राम के साथ इतना लगाव था कि बहुत से लोग राम को छोड़कर नहीं रह सके और राम के चिन्तन मे देह त्यागकर बैकुण्ठ चले गए, क्योंकि राम पूर्णब्रह्म भगवान थे।

**(आगामी अंक में बलराम-चरित)**

# मानस-रोग (२२/२)

*पण्डित रामकिंकर उपाध्याय*

(हमारे आश्रम द्वारा आयोजित विवेकानन्द जयन्ती समारोह के अवसरो पर पण्डितजी ने 'श्रीरामचरितमानस' के अन्तर्गत मानस-रोग प्रकरण पर कुल ४६ प्रवचन दिये थे। प्रस्तुत अनुलेखन उनके बाईसवे प्रवचन का उत्तरार्ध है। टेपबद्ध प्रवचनो को लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है, जो सम्प्रति श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर मे अध्यापक हैं। -सं.)

प्रभु की कृपादृष्टि बालि और सुग्रीव दोनों पर है। वे दोनों का कल्याण कर रहे हैं। एक ओर सुग्रीव हैं, जिन्हें भगवान राम युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे हैं और उनकी दुर्बलताओं को धीरे धीरे दूर कर रहे हैं। और दूसरी ओर तो बडी अनोखी बात देखने में आती है। सुग्रीव को वे यह कहकर युद्ध करने भेज देते हैं कि बालि को वे मारेंगे, पर उस युद्ध में जब बालि सुग्रीव पर प्रहार करता है तब भगवान कोई हस्तक्षेप नहीं करते। बड़ा अनोखा कार्य था प्रभु का। बेचारे सुग्रीव बालि के मर्मान्तक प्रहार से अवसन्न होकर अपने स्वभाव के अनुसार भागे और भगवान के पास आकर उलाहना देते हुए बोले – महाराज आपने तो कहा था –

**सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान । ४/६**

– मैं एक ही बाण से बालि को मारूँगा। पर बालि मुझ पर प्रहार करता रहा और आपने उसे नहीं मारा। तो इस पर भगवान ने कहा – बात यह हो गई कि –

**एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ।**
**तेहि भ्रम तें नहि मारेउँ सोऊ।। ४/८/५**

– मैं पहचान नहीं पाया कि कौन बालि है और कौन सुग्रीव। इसलिए मैंने नहीं मारा। यह वेदान्त का ब्रह्म है। यहाँ पर भगवान ने बालि को अपने तीन रूपों का दर्शन कराया – वेदान्त का ब्रह्म, कर्म-सिद्धान्त का ईश्वर और भक्ति का भगवान। और वे इन तीनो रूपों मे से किसी एक को चुनने की उसे स्वतत्रता दे देते हैं कि इनमें से जो रूप तुम्हें अभीष्ट हो उसे स्वीकार कर लो। युद्ध में पहले भगवान का हस्तक्षेप न करना और चुपचाप युद्ध देखते रहना, उनके समत्व के अनुकूल है। समः सर्वभूतेषु – कहकर समत्व का प्रतिपादन किया गया है। रामायण में कहा गया –

**जद्यपि सम नहिं राग न रोषू।**
**गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू।। २/२१९/३**

– वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप सम है। वह द्रष्टा मात्र है। अपनी ओर से प्रकृति के क्रिया-कलाप में हस्तक्षेप नहीं करता। पहले इसका परिचय दिया कि यह वेदान्त का ब्रह्म है। यह परिचय किसलिए दिया ? जब तारा ने बालि से कहा कि सुग्रीव आपको जो चुनौती दे रहा है, इस घटना के पीछे बल किसका है, जरा इस पर तो ध्यान दीजिए। तो बालि ने कहा कि मैं जानता हूँ कि इसके पीछे भगवान श्रीराम का बल है। तब तारा ने कहा कि तब तो आपको और भी सावधान रहना चाहिए। उसने कहा – नहीं नहीं, तुम राम का नाम सुनकर घबरा गई, तुम नहीं जानती पर मुझे राम का ज्ञान है। राम कैसे हैं ? तो कहा –

**कह बाली सुनु भीरू प्रिय समदरसी रघुनाथ। ४/७**

– "तुम भीरु हो, डर जाती हो, तुम्हे सच्चा ज्ञान नहीं है। भगवान राम तो समदर्शी हैं।" लेकिन याद रखिए, भगवान के समदर्शित्व के दुरुपयोग करने की जैसी बात बालि के मन मे आई, बहुत से लोग जब उसे बरतते हैं, तो उनके जीवन में भी वही बात आती है।

ईश्वर समदर्शी तो हैं पर इस ज्ञान की प्रतिक्रिया या फल हमारे जीवन में क्या होना चाहिए ? यह होना चाहिए कि ब्रह्म समदर्शी है और हम ब्रह्म के अंश हैं। जीव ब्रह्म से अभिन्न है, ऐसा बोध होने पर अगर हमारे अन्तःकरण में समत्व आ जाय तो ब्रह्म के समत्व का ज्ञान बड़ा सार्थक और कल्याणकारी हो। पर यदि हम उल्टा अर्थ ले लें, तब तो यह समत्व का ज्ञान बड़ा खतरनाक है। क्यो ? पता चल गया कि भगवान सम हैं, पाप और पुण्य, दोनों में तटस्थ है, तो प्रसन्न हो गये कि खूब पाप करो, क्योंकि जब वे सम हैं तब तो वे पाप और पुण्य मे भेद करेगे नहीं। बालि ने यही अर्थ लिया। भगवान अगर सम हैं तो मैं सुग्रीव पर प्रहार करता रहूँगा और भगवान देखते रहेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म के समत्व का ज्ञान अगर किसी व्यक्ति को समाज में अत्याचारी बना दे और उस समत्व-ज्ञान की आड मे व्यक्ति मनमाना आचरण करने लगे तो उसका क्या परिणाम होगा ? उसका परिणाम दिखाई देता है बालि के जीवन में। भगवान के समत्व का प्रतिपादन करके जब बालि चलने लगा तो गोस्वामीजी से किसी ने कहा कि वेदान्त की कितनी बढ़िया बात आज बालि ने कही है कम से कम आज तो इसे ज्ञानी की उपाधि

दे दीजिए। गोस्वामीजी ने कहा—यह ज्ञानी-वानी नहीं है। तो फिर ? बोले –

**अस कहि चला महा अभिमानी। ४/८/१**

– वह ज्ञानी नहीं, अभिमानी है। अभिप्राय यह है कि अगर उसे सच्चा ज्ञान हो जाता तो समझ लेता कि वस्तुतः सुग्रीव में और मुझमें रंचमात्र भी भेद नहीं है। ज्ञान हो जाने पर तो उसमे ब्रह्म का समत्व आ जाता, पर उसमें यह वृति आ गई कि हम सुग्रीव को सताएँगे और भगवान कुछ नहीं बोलेंगे। भगवान बोले – अच्छा चलो, हम एक क्षण के लिए वेदान्त का ब्रह्म बन जाते हैं। भगवान के इस समत्व के पीछे और भी एक तत्व निहित था। सुग्रीव को भी वे इसी प्रसंग में शिक्षा देना चाहते थे। भगवान ने जब बालि को मारने की प्रतिज्ञा की, तो सुग्रीव के मन में क्षणिक ज्ञान-वैराग्य आ गया। उन्होंने भगवान राम से कहा – महाराज, मैं तो समझता हूँ कि यह ससार मिथ्या है, और –

**बालि परम हित जासु प्रसादा।**
**मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा।।**
**सपनें जेहि सन होइ लराई।**
**जागें समुझत मन सकुचाई।।**
**अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।**
**सब तजि भजन करौं दिन राती।। ४/६/१९-२१**

अब मेरे मन में कोई भेद नहीं रह गया है। इसलिए अब ऐसी कृपा कीजिए कि सब कुछ छोड़कर मैं आपका भजन करूँ। भगवान को बड़ी हँसी आई – कहाँ तो मैं वेदान्त के ब्रह्मपद को छोड़कर भक्तों के लिए अवतार लेकर आया हूँ, पक्षपाती बना हूँ और ये बन गये वेदान्ती। बडी विचित्र बात है, कह रहे हैं – शत्रु-मित्र में कोई भेद नहीं रह गया। भगवान ने कहा – जरा कसौटी पर कस कर देखें कि इनका ज्ञान-वैराग्य कितना पक्का है। बालि का मुक्का पडा। भगवान तो यही परीक्षा ले रहे थे कि मुक्का पड़ने पर भी अगर वैराग्य बना रहता है, तब तो वह पक्का है, पर उस मुक्के से सुग्रीव का ज्ञान-वैराग्य हवा हो गया। वास्तव में वह तो क्षणिक वैराग्य था। जब लौटकर आए तो भगवान ने कहा – क्या करूँ ? इसमें भगवान का एक दूसरा व्यग्य यह भी था कि भाई, एक वेदान्ती तो तुम्हारा भाई बालि है, जो कह रहा है कि ब्रह्म सम है। और दूसरे वैराग्यवान तुम हो, जिसकी दृष्टि मे शत्रु-मित्र में कोई भेद नहीं है। तो मैं भी एसे दो महान ज्ञानी और

वैरागी में भला क्यों भेद करूँ ! तुम दोनों का हाल बिलकुल एक जैसा है, इसलिए मैंने तुम दोनों के बीच हस्तक्षेप बिलकुल नहीं किया। पर सुग्रीव के चरित्र में यही एक अच्छा पक्ष है कि वे अपनी भूल को तुरन्त स्वीकार कर लेते हैं। उन्होंने तुरन्त कहा – महाराज, मैंने जो कुछ कहा था, वह वापस लेता हूँ। – अच्छा अब तुम्हारा क्या कहना है ?

**मैं जो कहा रघुबीर कृपाला ।**
**बंधु न होई मोर यह काला ।। ५/८/४**

प्रभु, यह मेरा भाई नहीं, शत्रु है, मेरा काल है, मेरी रक्षा कीजिए। सुग्रीव तुरन्त ज्ञानी से भक्त बन गये और श्रीराम वेदान्त के ब्रह्म से भक्त के भगवान बन गये।

भक्तों के भगवान का तात्पर्य यह है कि जो अपने भक्तों का पक्ष लें और उनकी रक्षा करें। भगवान राम के पक्षपात का चिह्न यह था कि उन्होंने अपने गले की माला उतारकर सुग्रीव को पहना दी। बोले – यही अन्तर है तुममें और बालि में। तुम्हारी रक्षा करूँगा और उसको मारूँगा। अब वे सुग्रीव के लिए भक्त के भगवान बन गये और बालि के लिए कर्म सिद्धान्त के भगवान। सुग्रीव को अपनी माला पहना कर वे बोले। अच्छा अब जाकर बालि को एक बार फिर चुनौती दो। सुग्रीव तो साहस नहीं कर पा रहे थे। बालि के भयंकर मुक्के को भूल नहीं पा रहे थे। प्रभु ने सोचा – जरा देखें, इसमें और कोई दोष तो नही बचा है। उन्होंने सुग्रीव से कहा – अच्छा अगर हम अपना बल दे दें, तो जाओगे ? सुग्रीव तैयार हो गये और बोले – हाँ, जाऊँगा। उन्होंने सोचा कि भगवान का बल लेकर जाऊँगा और कदाचित जीत गया तो जीत तो मेरी ही मानी जायगी। बल भले ही भगवान का हो, पर लोग तो यही देखेंगे कि सुग्रीव जीत गया। इस अवसर को क्यों छोड़ा जाय। सुग्रीव बोले – अच्छी बात है आप अपना बल दे दीजिए। भगवान ने बल तो दे दिया लेकिन बडी उल्टी बात हो गई। क्या ? भगवान का बल लेकर गये तो भी हार गये। इसका अभिप्राय क्या है ? इसको एक दृष्टान्त के द्वारा यों कहें कि जैसे आप किसी उदार व्यक्ति के घर दूध माँगने जायँ और वह उदारतापूर्वक आपका बर्तन दूध से भर दे, पर घर पहुँचने पर आपने देखा कि बर्तन में एक बूँद भी दूध नहीं है। क्या हुआ ? बात यह थी कि बर्तन में एक छेद था, उससे सारा दूध रास्ते में बह गया। भगवान ने सुग्रीव को जो बल दिया था वह उसके छेदवाले बर्तन से बह गया। कौन

सा छेद ? सुग्रीव जब लड़ने चले तो सोचने लगे कि भगवान ने बल दिया है, पर अकेले भगवान के बल से काम थोड़े ही चलेगा? इसलिए भगवान के बल के साथ थोड़ा-सा अपना छल भी मिला दें तो जीतेंगे। गोस्वामीजी छल को छिद्र भी कहते हैं –

**निर्मल मन जन सो मोहि पावा।**
**मोहि कपट छल छिद्र न भावा।। ५/४४/५**

– जो अपने छल या चतुराई का आश्रय लेकर चलता है, उसे मेरी आवश्यकता नहीं है। जब उसमें छल आ गया तो फिर वह अपने छल के सहारे ही जीते। सुग्रीव हार गया और तब उसमें समर्पण की वृत्ति आई। उसने कहा – प्रभो, मैं हार गया। बालि को हराने में मैं समर्थ नहीं हूँ। उसे जब अपनी असमर्थता का बोध हुआ तब भगवान उसके लिए भक्तों के भगवान बनकर बालि के ऊपर प्रहार करते हैं और सुग्रीव की रक्षा करते हैं।

इस तरह सुग्रीव के जीवन में भगवान ने अपने दो रूपों का परिचय दिया। लेकिन बालि के सामने उन्होंने तीन रूपों का परिचय दिया। भगवान बालि के सामने जाकर भी उस पर बाण चला सकते थे। कई लोग यह कहा करते है कि बालि को यह वरदान था कि अगर कोई बालि के सामने चला जाय तो उसका आधा बल बालि में चला जाता था। इसीलिए श्रीराम डरकर उसके सामने नहीं आए। अरे भाई, व्यक्ति का आधा बल बालि में चला जाय – यह तो समझ में आता है, पर भगवान का आधा बल ! यह कौन सा गणित है ? जो असीम है, अनन्त है, उसका भी क्या आधा हुआ करता है ? भगवान का बल तो अनन्त है, असीम है। यह तो एक दन्तकथा है, इसके पीछे कोई तथ्य नहीं है। भगवान बालि के सामने नहीं गये। इसका अभिप्राय क्या है ? भगवान यह बताना चाहते थे कि कर्म-सिद्धान्त का जो ईश्वर है, वह बिना सामने आए ही बाण चलाता है। भगवान का बाण क्या है ? गोस्वामीजी लंकाकाण्ड के प्रारम्भ में कहते हैं –

**लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।**
**भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड।।६/१**

– काल का धनुष, काल का बाण और उसका चलानेवाला है ईश्वर। वह ईश्वर छिपा हुआ है। सामने प्रत्यक्ष नहीं है। वृक्ष की आड़ से बाण चलाता हैं। यह वृक्ष क्या है ? वृक्ष की व्याख्या गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में की है –

**संसार कान्तार अति घोर गम्भीर वन।**

– ससार एक घनघोर वन है और व्यक्ति के कर्म ही उसके वृक्ष हैं। और इसका तात्पर्य यह है कि कर्म-सिद्धान्त की मान्यता है कि ईश्वर कर्म का फल कर्म की आड़ से देता है। वह कालरूपी धनुष-बाण के माध्यम से जीव को कर्म का फल देता है। कर्म का फल देने वह प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आता। कर्म-सिद्धान्त में यही ईश्वर का स्वरूप है। इसीलिए जब बालि ने पूछा – आपने मुझे छिपकर क्यों मारा ? सामने क्यों नहीं आए? तो प्रभु ने कहा – जब तुम कर्म-सिद्धान्त को मानते हो और मुझे ईश्वर समझते हो, तो धर्मशास्त्र में तो यही कहा गया है न कि ईश्वर कर्म की आड़ से फल देता है। वह फल देने के लिए प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आता। अतः मैंने तुम्हें कर्म की आड़ से तुम्हारे कर्म का फल दिया । – तो फिर अब सामने क्यों आ गये ? भगवान ने बड़ा अनोखा कार्य किया था। बालि की छाती पर जब बाण लगा और वह गिर पड़ा, तब प्रभु उसके सामने आ गये। यह उनकी कृपा का स्वरूप है। सामने आना। कोई आवश्यक नहीं था। कर्म का फल दे दिया, वृक्ष की आड़ में खड़े रहते और बालि की मृत्यु हो जाती। भगवान का चुनाव भी बड़ा अद्भुत होता है। बालि के सिर पर बाण नहीं मारा। उसका सिर नहीं काटा। हृदय पर बाण मारा –

**मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि ।।४/८**

– यह सांकेतिक भाषा है। इसका अभिप्राय क्या है। भगवान ने सोचा कि इसका सिर तो ठीक है अर्थात् बुद्धि ठीक है, बातें तो ज्ञान की करता है, पर हृदय में अभिमान है। अभिमान नष्ट करना है, इसलिए हृदय पर बाण मारा। और जैसे ही अभिमान नष्ट हुआ, वे प्रकट हो गये – 'भये प्रगट कृपाला'। अब वे वेदान्त के ब्रह्म अथवा कर्म-सिद्धान्त के ईश्वर नहीं, बल्कि कृपालु ईश्वर, भक्तों के भगवान के रूप में प्रकट हो गये। ये ईश्वर भक्तो के लिए अवतरित होते हैं, मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं। बालि ज्योही गिरा भगवान राघवेन्द्र तुरन्त उनके सामने प्रकट हो गये।

भगवान ने ये जो तीन रूप बालि को दिखाये, इसका अभिप्राय क्या है? वे बालि को अवसर देते हैं। बालि कहता है – ब्रह्म सम है। भगवान सुग्रीव को भेजकर उसे अवसर देते हैं कि अगर तुम समझते हो कि ब्रह्म सम है तो तुम भी समत्व में आरूढ़ हो जाओ। पर तुम्हारे अन्तःकरण मे तो भेदबुद्धि है। इस भेदबुद्धि से प्रेरित होकर तुमने जो कर्म किया, इसका परिणाम भी मैंने कर्म-सिद्धान्त के ईश्वर के रूप में तुम्हे दे दिया। और अब अगर तुम्हे

भक्ति का भगवान चाहिए तो लो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। भक्ति भगवान की कृपा का पक्ष है, करुणा का पक्ष है। ज्ञान और कर्म का ईश्वर निराकार है, पर भक्ति का ईश्वर साकार है। वहाँ छिपना नहीं, प्रत्यक्ष होना ही ईश्वर का स्वरूप है। करुणासागर भगवान आकर बालि के सामने खड़े हो गये। बालि पहले तो शास्त्रार्थ करता है, बड़ा तर्क-वितर्क करता है, पर जब भगवान का चुनाव करने का अवसर आया, तब उसने वेदान्त के ब्रह्म और कर्म सिद्धान्त के ईश्वर के स्थान पर भक्ति के भगवान का ही चुनाव किया। वह भगवान से बोला –

**सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोर।**
**प्रभु अजहुँ मैं पापी अंतकाल गति तोर।।४/९**

आपके सामने मेरी वाक्चातुरी तो नहीं चल सकती, परन्तु प्रभो, मैं आपसे एक ही बात पूछना चाहता हूँ कि 'प्रभु अजहूँ' – अजहूँ माने आज तक, जब तक आप नहीं थे, तब तक मैंने जो पाप किए, उसका दण्ड तो आपने मुझे दिया, मुझे पापी माना, यहाँ तक तो ठीक है, पर अब जब आप मेरे सामने खड़े हैं और मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ, तब आप बताइए कि अब मैं पापी हूँ या नहीं ?

**सुनत राम अति कोमल बानी।**
**बालि सीस परसेउ निज पानी।। ५/१०/१**

– सुनकर भगवान मुस्कुराये और बालि के सिर पर हाथ रख दिया। भक्तों के भगवान जो कर्मों के परिणाम को भी क्षमा करने को प्रस्तुत हैं, जीव के ऊपर दया करके उसके अभिमान को नष्ट करके, उसके सिर पर हाथ रख देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि अखिलविरुद-धर्माश्रय ईश्वर एक ओर कठोर बनकर पाप का सहार कर रहे हैं तो दूसरी ओर कोमल बनकर भक्त की रक्षा का व्रत लिए हुए हैं। वही हाथ, जिसके द्वारा बाण चलाया गया था, अब बालि के मस्तक पर है।

अब भगवान ने बालि के सामने पहला प्रस्ताव यही रखा – 'अचल करहु' – बालि मैं चाहता हूँ कि तुम जीवित रहो। ये दूसरे पात्र हैं जिनसे भगवान ने जीवित रहने का अनुरोध किया। इसके पहले उन्होने गीधराज से भी यही कहा था। बालि से जब कहा, तब तक बालि की इतनी अधिक उन्नति हो चुकी थी, व इतना अधिक आगे बढ़ चुके थे कि न तो उन्हे ज्ञान की दृष्टि

से जीवित रहना उचित लगा और न ही भक्ति की दृष्टि से। भक्ति की दृष्टि से उनके मन में यह बात आई कि प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं मुझे मारने की। यह उनका ही संकल्प है। अवश्य ही मेरे कल्याण के लिए उन्होंने ऐसा सकल्प किया है। और यदि मैं जीवित रहना चाहूँगा तो प्रभु की प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी। उनका संकल्प असत्य हो जायगा। जीवित रहने की इच्छा प्रभु की इच्छा के विपरीत है। इसलिए उन्होंने प्रभु के प्रस्ताव को नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। लेकिन इससे भी बड़ी बात तो यह हुई कि बालि के जीवन में तत्त्वज्ञान का उदय हो गया है। भगवान कहते हैं – बालि, मैं तुम्हें नहीं, तुम्हारे अभिमान को मारना चाहता था। वह मर गया। अब मैं चाहता हूँ कि तुम जीवित रहो। मैं तुम्हें जीवन प्रदान करने के लिए प्रस्तुत हूँ। बालि तुरन्त बोले – प्रभो, क्या आप मुझ पर प्रसन्न नहीं हैं ? – क्यों ? – अगर आप मुझ पर प्रसन्न होते तो यह न कहते कि तुम जीवित रहो। बालि की दृष्टि कितनी बदल चुकी है ! हममें से अगर किसी से भगवान पूछ दें – क्या मैं तुम्हें अमर बना दूँ ? तो हमें कैसा लगेगा ? लोग तो गद्‌गद हो जाएँगे कि बस महाराज इससे बढ़िया बात और क्या होगी ! पर बालि के जीवन में कितना विकास हो चुका है ? कहते हैं – 'मोहि जानि अति अभिमान बस' – प्रभो, क्या आप समझते हैं कि अभी भी मेरा देहाभिमान बना हुआ है ? क्या अब भी मैं इस देह को आत्मा मानकर इस देह को बचाने की चेष्टा करूँगा ?

**मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही।**
**अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।।४/९/१**

बड़ी सुन्दर बात कही बालि ने। शरीर और आत्मा की बात है। शरीर का क्या महत्त्व है ? जैसे हम एक छोटा-सा पौधा लगाते हैं, तो उसकी रक्षा के लिए उसके चारों ओर बाड़ भी लगा देते हैं। और जब वह पौधा बढकर बड़ा वृक्ष हो जाता है, तब उसे बाड़ की आवश्यकता नहीं रह जाती। लेकिन कोई ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति निकल आए, जो उस पौधे के बड़े हो जाने पर भी, वृक्ष हो जाने पर भी, उसके चारों ओर बाड़ लगाने की चेष्टा करे और बाड़ लगाने के लिए उसी वृक्ष की डालों को काट डाले, तो उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा ? शरीर क्या है ? काँटे की बाड़ ही तो है। और उस काँटे की बाड़ में आत्मतत्त्व का पौधा है। उसके भीतर वह सुरक्षित है। ज्ञान-वैराग्य सुरक्षित है। अब आप जो इस शरीर को सुरक्षित रखने की बात

कहते हैं, तो इसका तो यही अर्थ होगा कि जिस काँटेदार बबूल के वृक्ष को काटकर मैंने इस कल्पतरु की रक्षा के लिए बाड़ बनाया, उसी आत्मतत्त्व रूपी कल्पवृक्ष को काटकर अब मैं बबूल के लिए बाड़ बनाऊँ। यह तो आपकी प्रसन्नता के लक्षण नहीं हैं।

बालि का देहभिमान मिट गया। उसकी देह के प्रति ममता मिट गई। अहंता और ममता दोनों मिट गये, यही मुक्ति का सच्चा स्वरूप है। लेकिन बालि तो इस मुक्ति से भी आगे बढ़ गया। बड़ी अनोखी बात है। अमरता का क्या अर्थ है ? देह के प्रति अहंता और ममता ही तो मृत्यु है। जो इन दोनों से मुक्त हो गया, वह मृत्यु से भी मुक्त हो गया, अमर हो गया। बालि तो मुक्त हो ही गया, पर साथ ही उसने भगवान को बाँध लिया। भक्ति की यही विलक्षणता है। ज्ञानी भी मुक्त होता है पर भक्त की विशेषता यह है कि वह स्वय मुक्त होने के साथ साथ भगवान को भी बाँध भी लेता है। बालि ने भगवान को कैसे बाँध लिया ? विभीषणजी ने भगवान से पूछा था – महाराज, आपको बाँधने का उपाय क्या है ? भगवान बोले रस्सी तो तुम्हारे पास ही है। उससे जो दूसरों को बाँधे हो, उन्हें छोड़कर मुझे बाँध लो –

**जननी जनक बंधु सुत दारा।**<br>
**तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।।**<br>
**सब कै ममता ताग बटोरी।**<br>
**मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।। ५/४८/४-५**

– ममता के धागों को संसार से निकालकर मेरे पैरों में कसकर बाँध दो। ज्ञानी तो ममता को त्याग करता है और भक्त अपनी ममता का भगवान के पैरो मे पिरो देता है। बालि में अपने शरीर के प्रति जो अहंता थी, उसे तो उन्होने भगवान के चरणों में अर्पित कर ही दिया और ममता का जो केन्द्र था – पुत्र, मेरा बेटा, उस अगद को भी बुलाया और उसका हाथ पकड़कर भगवान के हाथो में दे दिया। कहा – प्रभो, अब आप जरा अंगद का हाथ पकड़ लीजिए। परिणाम क्या हुआ ? अहता प्रभु के चरणों में और ममता हाथों में। प्रभु के हाथ बँध गये –

**यह तनय मम सम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।**<br>
**गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए।। ४/९/२**

और तब ?

**राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग। ४/१०**

इस प्रकार बालि अहंता और ममता से मुक्त हो गया। भगवान ने उसकी अहता और ममता को स्वीकार कर लिया। अंगद को उन्होंने अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया। काल एक ध्रुवसत्य है, अपरिहार्य है। इस कालजन्य दुःख पर हम चाहें तो बालि और जटायु की तरह विवेक के माध्यम विजय प्राप्त कर सकते हैं।

दुःख का दूसरा प्रकार है – कर्मजन्य दुःख। जो भी कर्म हम करते हैं, उसका परिणाम हमें सुख और दुःख के रूप में भोगना पड़ता है। कुछ कर्मफल तो ऐसे हैं जो हमारे इसी जन्म के कर्मजन्य हैं और कुछ कर्मफल हमें ऐसे भी भोगे पड़ते हैं जिनका कर्म इस जीवन में दिखाई नहीं देता, तब कहना पड़ता है कि यह हमारे पूर्वजन्मो में किए गये कर्मों का फल है। इसे प्रारब्ध कहा जाता है। इस पूर्वजन्मों के प्रारब्ध को टाला नहीं जा सकता और इस जन्म में भी जाने-अनजाने जो कर्म हो चुके हैं उनका फल भी अनिवार्य है, उन्हें भी भोगना पडेगा। पर इन कर्मजन्य दुःखों से बचने का एक सुन्दर उपाय है। क्या ? यज्ञ-भावना के द्वारा, यथा उपवास। अनाहार की स्थिति दो प्रकार से आती है – एक तो अभावजन्य और दूसरा उपवास के कारण। भोजन के अभाव में व्यक्ति को अगर एक दिन भी निराहार रहना पड़े तो वह बेचैन हो उठता है, पर एकादशी या अन्य किसी उपवास के दिन वह स्वेच्छा से निराहार रहता है। भोजन का अभाव दोनो में है पर उपवास मे तपस्या की भावना है। अभाव मे भी उसे सुख की अनुभूति होती है। व्यक्ति यदि यह भावना करे कि उसके द्वारा हम पाप से मुक्त हो रहे हैं, तब वे दुःख उसके जीवन में दुःख के स्थान पर तप बन जाते है। जैसे तप मे हमें सुख और प्रसन्नता होती है, उसी तरह कर्मजन्य दुःख को भी हम तप की भावना से ले, तो उन दुःखों को जीत सकते हैं।

अब दुःख का तीसरा प्रकार है – गुणजन्य दुःख। गुण वे हैं जिनसे हमारा निर्माण हुआ है। सत्व, रज, तम – ये तीनों गुण हममे विद्यमान है। कभी तमोगुण। इनसे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का समाधान यह है कि यदि हम गुणो का सदुपयोग करना सीख ले, तो गुणजन्य दुःखो से हम बच सकते हैं। तमोगुण के कारण नींद आती है, रजोगुण के कारण कर्म होते हैं सत्वगुण के द्वारा विचार होता है। तीनो बहुत अच्छे हैं, बशर्ते हम तीनो का उचित

समय पर सदुपयोग करें, विचार के समय विचार करें, पर जब हमें कर्म करना चाहिए, तब कहीं हम विचार करने बैठ जायँ, कर्मशून्य हो जायँ, तब क्या होगा ? जब रजोगुण चाहिए तब सत्वगुण आ गया तो ? यह एक समस्या है। जिस समय आप कथा सुन रहे हैं, उस समय चाहिए सत्त्वगुण, पर उसी समय कई लोगो का तमोगुण प्रबल होने लगता है, नींद आने लगती है। जब कथा सुनकर लौटे और किसी ने पूछ दिया, क्या सुने ? बोले – भई, क्या बताऊँ कथा में नींद आ गई। इस तरह गुण समस्या भी बन जाते हैं। तीनों गुण तो रहेंगे ही, उनका जीवन में प्रभाव तो होगा ही, नींद भी आएगी, कर्म भी होगा, विचार भी होगा। पर यदि हम इन्हें सही दिशा में मोड़कर इनका सदुपयोग कर लें, तो इन गुणजन्य समस्याओं का समाधान हम अपने जीवन में पा लेंगे।

पर सबसे विचित्र रोग है – स्वभावजन्य रोग। यह कौन सा रोग है? गोस्वामीजी मानस-रोग के सन्दर्भ में कहते है – ''पर सुख देखि जरनि सोइ छई।'' – दूसरे का सुख देखकर जलना। बड़ी विचित्र बात है। यह कौन सा दुःख है। काल का, कर्म का या गुण का ? नहीं ! यह स्वभाव का दुःख है। व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा बन गया है। यह काल, कर्म, गुण का नहीं बल्कि व्यक्ति का अपना ही रचा हुआ दुःख है। किसी वस्तु की कमी नहीं है, पर दूसरो का सुख देखकर जलन हो रही है। जलने का स्वभाव ही बना लिया है। स्वभाव के सन्दर्भ में एक संस्मरण याद आ रहा है। वृन्दावन में एक पण्डितजी थे। उन्हें सुबह अगर अच्छा और स्वादिष्ट भोजन नहीं मिला तो वे बहुत बिगड़ते थे और इतना ही नहीं, सारा दिन उनका मिजाज खराब रहता था। कथा में आते, तो वहाँ भी उनको वही दुःख कि सुबह अच्छा और स्वादिष्ट भोजन नहीं मिला। किसी से भी प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार नहीं कर पाते थे। और इसके बाद अगले दिन रसोइया अगर अच्छा भोजन बना दे, तो ऐसी बात नहीं कि पण्डितजी प्रसन्न हो जायँ, बल्कि उनका गुस्सा सौ गुना बढ़ जाता था। और बिगड़कर कहते थे – अरे मूर्ख, तूने आज जैसा स्वादिष्ट भोजन बनाया है, वैसा कल क्यों नहीं बनाया ? अब यह जो दुःख है, अच्छा नहीं बना तो भी दुखी, अच्छा बना तो भी दुखी, इस दुःख को क्या कहें ? यह काल का परिणाम है या कर्म का या गुण का ? यह परिणाम है स्वभाव का । हमारे एक अन्य सज्जन व्यक्ति ईंट के व्यापारी थे । एक सज्जन ने वताया कि इनको इस वर्ष बड़ा लाभ हुआ है। मुझसे मिले तो

मैंने कहा कि इस वर्ष तो आप बड़े प्रसन्न होंगे। बोले – कहाँ महाराज, पिछले वर्ष मेरी तमाम कच्ची ईंटें बह गई थीं। इस बार जैसा लाभ हुआ वैसा पिछली बार नहीं हुआ था। हमने कहा – कोई बात नहीं, पिछली बार न सही पर इस बार तो हुआ ? कहने लगे – पता नहीं अगले साल होगा कि नहीं। तो मैंने कहा – पर अभी तो आपको लाभ हुआ है। तो कहने लगे – क्या फायदा, मुझसे अधिक लाभ तो पड़ोसी को हुआ है। मैंने कहा – अब आपका दुःख कभी नहीं मिटेगा। भूतकाल में ऐसा क्यों हुआ, भविष्य में पता नहीं क्या होगा और वर्तमान में हमसे अधिक लाभ पड़ोसी को हुआ है। यह दुःख क्यों है? यह स्वभावजन्य दुःख है। यही मानस-रोग की विचित्रता है। ''पर सुख देखि जरनि सोइ छई'' अर्थात् बिना कारण का दुःख। हमें भोजन न मिले तो हम दुःखी हों, पर दूसरों को भोजन करते देखकर हम दुखी हो जायँ; हमारे पास वस्त्र न हो तो हम दुखी हों यह तो समझ में आता है, पर हमारे पास अभाव न हो तो भी दूसरों के वस्त्र देखकर हम दुःखी हो जायँ – यह क्या है? यह स्वभावजन्य दुःख है, जिस दुःख में कोई बाध्यता नहीं है। काल, कर्म और गुण में तो कुछ बाध्यताएँ हैं और उन बाध्यताओं के कारण हमें। उन दुःखों को किसी न किसी रूप मे स्वीकार करना पड़ता है। पर स्वभावकृत जो दुःख है, वह तो अपना ही बनाया हुआ दुःख है। और इसका अभिप्राय यह है कि अपने ही कुपथ्य से जो रोग हुआ है, अपनी ही भूल से हम जो दुःख पा रहें हैं, वह तो अपना ही बनाया हुआ दुःख है, रोग है। इस दुःख का कारण है हमारा स्वभाव। यही मानस-रोग है। इसको हम कैसे जीतें, आगे हम इसी पर चर्चा करेंगे।

# आधुनिक युग में धर्म की आवश्यकता (२)

*स्वामी सत्यरूपानन्द*

### धर्म आत्मा का विज्ञान है

धर्म आधुनिक युग की इस सबसे बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है। धर्म हमें अपने आप से परिचित कराता है। अपनी आत्मा को खोजना सिखाता है। धर्म कहता है, 'आत्मान विद्धि'– अपने आप को जानो। पहले स्वयं से परिचित हो जाओ, फिर संसार से परिचय करना सहज हो जायेगा। स्वयं को जान लेने के पश्चात संसार का ज्ञान अधिक अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत सारे संसार का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात भी यदि हम अपने आपको न जान सके तो हमारा जीवन निरर्थक और व्यर्थ हो जायेगा।

मनुष्य की बुद्धि जिसने प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन किया है, जिसने अणु का भंजन किया है, वह प्रकृति से श्रेष्ठ एव अणुशक्ति से भी अधिक शक्तिशाली है। उस बुद्धि के पीछे भी जो आत्मा है वह उससे भी श्रेष्ठ और शक्तिशाली है। उससे श्रेष्ठ और महान और कुछ नहीं है। वही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वशक्तिमान है। कठोपनिषद में ऋषि घोषणा करते हैं, "पुरुषान्न पर किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः" – पुरुष से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। वही सब की परम अवधि एवं परम गति है।

धर्म मनुष्य के भीतर छिपी हुई इस शक्ति को ढूंढ़ने का उपाय बताता है। मनुष्य के भीतर छिपी हुई इस शक्ति को ढूँढकर उसे जागृत करना, मनुष्य के व्यक्तित्व के माध्यम से उसे अभिव्यक्त करना – यही तो धर्म का कार्य है। मानव अन्तःकरण ही धर्म का कार्यक्षेत्र है। धर्म आत्मा का वह विज्ञान है, जो हमे आत्मा की असीम शक्ति से परिचित करा हमें अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित कर अमृतत्व की प्राप्ति करा देता है। धर्म मानव-जीवन को सफल एवं कृतार्थ करनेवाला परम विज्ञान है।

### धर्म संगठक तत्व है

धर्म की आवश्यकता और उसके महत्व को जानने के लिये उसका शाब्दिक अर्थ बहुत सहायक है। धर्म शब्द संस्कृत के 'धृ' धातु से बनता है, जिसका अर्थ है धारण करना। जो तत्व किसी भी वस्तु को धारण करता है, उसे

स्थिर रखता है, उसके अस्तित्व का आधार है – वही धर्म है। अतः जो तत्व व्यक्ति को, समाज को, राष्ट्र को, समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड को धारण करे वह धर्म है।

धर्म वह तत्व है जो हमारे व्यक्तित्व को संगठित और सुव्यवस्थित करना है। डा. राधाकृष्णन ने एक स्थान पर लिखा है, "अपने मूल में धर्म व्यक्ति का संगठन और समाज की मुक्ति है।"

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा, "धर्म आत्मानुभूति है"। वस्तुतः धर्म बिखरे हुए व्यक्तित्व को संगठित कर व्यक्ति के जीवन को पूर्ण एवं सार्थक बना देता है। और हम सभी यह जानते हैं कि वही व्यक्ति सुखी होता है जिसका व्यक्तित्व सगठित एवं जीवन संतुलित होता है। वही समाज उन्नत तथा विकासशील होता है, जिसमें इस प्रकार सगठित व्यक्तित्व वाले लोगों की संख्या अधिक होती है। ऐसे ही समाज में व्यक्ति को अपने सर्वांगीण विकास का सुअवसर भी प्राप्त होता है।

### धर्म एक जीवन-पद्धति

हमारे जीवन में धर्म की क्या आवश्यकता है इस बात को समझने के लिये जीवन स्वयं क्या है – इस बात पर भी थोड़ा विचार कर लेना उचित होगा। स्वामी विवेकानन्दजी ने खेतड़ी के राजा अजित सिह को उनके एक प्रश्न के उत्तर में जीवन की एक परिभाषा दी थी। जीवन की इतनी सरल अथच परिपूर्ण परिभाषा अन्यत्र मिलना कठिन है। उन्होंने कहा था, "दमन करने में प्रवृत्त परिस्थितियों के मध्य 'जीव' का स्वय को अभिव्यक्त और विकसित करना ही जीवन है।"[1]

मनुष्य के भीतर एक चैतन्य सत्ता विद्यमान है, जो स्वयं को प्रगट एवं अभिव्यक्त करने के लिये निरतर प्रयत्नशील है। किंतु परिस्थितियॉं प्रायः उसे दबाकर रखना चाहती है, उसकी अभिव्यक्ति और विकास के मार्ग मे प्रायः बाधा देना चाहती हैं, किन्तु वह चैतन्य तत्व सदैव इन परिस्थितियो के विरुद्ध संघर्ष करता रहता है। यह सघर्ष उसके अपने स्वाभाविक ईश्वरत्व और महानता को प्रगट करने के लिये होता है और तब तक चलता रहता है जब तक कि 'जीव' पूर्णरूपेण अपनी महानता और ईश्वरत्व को प्रगट कर उसमें प्रतिष्ठित

१. दी लाइफ आफ स्वामी विवेकानन्द, बाई हिज ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न डिसाइपल्स, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, सप्तम मुद्रण १९६५, पृ. २१९ ।

नहीं हो जाता। आत्म-अभिव्यक्ति के इस संघर्ष का नाम ही तो जीवन है।

अपने ईश्वरत्व की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में धर्म हमारी सबसे अधिक सहायता करता है। धर्म हमें जीवन की वह पद्धति सिखाता है जिसके द्वारा हम अपनी महानता की अभिव्यक्ति के मार्ग में आनेवाली सभी बाधाओं को दूर कर अपने लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं। धर्म मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास एवं उन्नति की प्रक्रिया है। धर्म वह अनुभव है जिसमें व्यक्ति के जीवन का प्रत्येक पक्ष अपनी चरम सीमा तक विकसित एवं उन्नत हो जाता है।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि धर्म जीवन-यापन की वह पद्धति है जो मानव को भगवान बना देती है।

### धर्म जीवन का निर्माता और नियामक है

वनस्पतियों और पशु-पक्षियों तक जीवन के विकास की प्रक्रिया स्वचालित होती है। उसमें वनस्पतियों या पशु-पक्षियों का कोई योगदान नहीं होता। प्रकृति के नियमो द्वारा ही उनका विकासक्रम चलता है। किन्तु मानवीय स्तर पर विकास की क्रिया स्वचालित नहीं है। उसमें मानवीय प्रयत्न का उल्लेखनीय योगदान होता है। मानवीय स्तर पर जीवन विकास की प्रक्रिया तीव्र एवं उन्नत हो सकती है। इस स्तर पर वह स्वचालित और अंधी नहीं रह जाती। मनुष्य विकास के दुराहे पर खड़ा होता है। यह उस पर निर्भर करता है कि वह ऊपर की ओर उन्नति की चेष्टा करते हुए नर से नारायण होने की दिशा में बढ़ता है या विषय भोगों में डूब अपने मन और इन्द्रियों का दास हो पुनः पाशविक बर्बरता के गर्त में गिरता है। प्रकृति स्वयं मनुष्य को उन्नत या पतित नहीं करती।

मनुष्य के विकास का अर्थ है उसके मानवीय गुणों का विकास। उसके नैतिक चरित्र का विकास। मनुष्य जितना सहिष्णु, उदार, दयालु, परोपकारी, सेवापरायण, निस्वार्थी, संयमी और त्यागी होता है वह उतना ही महान बनता जाता है। ऐसे व्यक्ति का अपने मन और इन्द्रियो पर अधिकार होता है। अपनी कल्पनाओं और विचारो पर उसका नियंत्रण होता है। भगवान बुद्ध, महात्मा ईसा, गुरु नानकदेव जी तथा हमारे युग मे भगवान रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द आदि ऐसी विभूतियाँ थीं, जिनके जीवन में मानवता का परिपूर्ण विकास हुआ था। ये सभी महापुरुष जिनके जीवन में मानवता का पूर्ण विकास हुआ था एवं जिन्होंने अपने जीवन मे ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त

कर लोक कल्याण के लिये उसे अभिव्यक्त किया था। ये सभी धार्मिक व्यक्ति थे। उनके श्वास-प्रश्वास में धर्म स्पन्दित था। इनके जीवन की प्रक्रिया में ही धर्म का विधान था। इनका आचरण धर्म का मूर्तिमान स्वरूप था। धर्म के द्वारा ही इनके जीवन का निर्माण हुआ था।

अतः हम देखते हैं कि मनुष्य की उन्नति और विकास के लिये, उसकी पूर्णता के लिये धर्म की नितान्त आवश्यकता है। धर्म मानव स्वभाव का एक आधारभूत तत्व है। उसके बिना मानव-व्यक्तित्व का गठन हो ही नहीं सकता। धर्म मानव स्वभाव का एक आभ्यान्तरिक तत्व है।

भौतिक विज्ञान की महान उपलब्धियों के कारण आधुनिक युग की चकाचौंध में हम मानव जीवन की सफलता के मूलतत्व धर्म को भूलते जा रहे हैं। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। निस्सदेह वैज्ञानिक ज्ञान एक महान शक्ति है, किंतु उस शक्ति का सदुपयोग कैसे करें इसका ज्ञान इससे भी महान है। भौतिक विज्ञान हमे यह ज्ञान नहीं दे सकता। विज्ञान हमें साधन तो देता है, किन्तु साध्य के विषय में वह हमें कुछ नहीं बता सकता। मनुष्य के जीवन का क्या प्रयोजन है यह विज्ञान हमे नहीं बता सकता।

आधुनिक युग की एक जटिल समस्या है, जीवन की उद्देश्यहीनता। धर्म इस समस्या का सर्वांगपूर्ण समाधान प्रस्तुत करता है। धर्म कहता है, 'आत्मानं विद्धि' – अपने आपको जानो। 'तत् त्वम् असि' – तुम वही (ब्रह्म) हो। अपने ईश्वरत्व को जागृत करो, उसे पहिचानो।

धर्म मनुष्य के आतरिक विकास की प्रक्रिया है । सामान्यतः मनुष्य का व्यक्तित्व अविकसित अवस्था में रहता है। उसे उचित मार्गदर्शन एव प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति को स्व प्रयत्न से विकसित करना पडता है। व्यक्तित्व के विकास के बिना मनुष्य अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किये बिना जीवन में पूर्णता नही आ सकती और हम सभी यह जानते है कि अपूर्ण व्यक्ति कभी भी शात और सुखी नहीं हो सकता।

आत्मविकास की यह प्रक्रिया मनुष्य के भीतर से होती है। मनुष्य जब अपने बिखरे हुए मन को समेट कर अपने ही भीतर झॉकने का, स्वय को देखने का, स्वय के भीतर अपने व्यक्तित्व की गहराइयो मे जाने का प्रय करता है, तभी आत्मविकास की यह प्रक्रिया प्रारभ होती है। आतरिक विकास

की यह प्रक्रिया धर्म के द्वारा ही संभव है। वस्तुतः यही धर्म का कार्यक्षेत्र है।

**उपसंहार**

आज हम उस दुराहे पर खड़े हैं जहाँ एक ओर विनाश और दूसरी ओर विकास है। भौतिकवादी जीवन-दर्शन तथा बृहत वैज्ञानिक शक्ति से युक्त होने के कारण मनुष्य आज उन्मत्त हो गया है। अपनी महा विनाशकारी वैज्ञानिक शक्ति के मद से मत्त मनुष्य क्रोध, ईर्ष्या आदि के आवेश में आकर किसी भी क्षण अणु अस्त्रों, रासायनिक अस्त्रों आदि के प्रयोग द्वारा विश्व विनाश के जघन्य कर्म में प्रवृत्त हो सकता है। भौतिक शक्तियों द्वारा उसकी इन विनाशकारी प्रवृत्तियों पर अधिक समय तक नियंत्रण नहीं रखा जा सकता। अणु अस्त्रों आदि से सन्नद्ध देश आज परस्पर प्रतियोगिता में लगे हुए हैं। उनमें परस्पर विश्वास नहीं रह गया है। वे एक दूसरे के प्रति सशक हो उठे हैं। शंकायुक्त यह प्रतियोगिता किसी भी क्षण प्रतिहिंसा में बदल सकती है और एक बार मनुष्य के हृदय में यदि यह प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी तो उसकी ज्वाला विश्व का विनाश किये बिना शांत नहीं होगी।

दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, सौहार्द्र, सहानुभूति, सहयोग आदि मानव हृदय की पावन वृत्तियों को जागृत कर ही मानव समाज को इस महाविनाश से बचाया जा सकता है । इन शुभ वृत्तियों को जागृत करने का एकमात्र उपाय है मानव हृदय में सोये हुए परमात्मा को जगाना। मनुष्य की दिव्यता का आह्वान क़र उसकी चेतना में परिवर्तन लाना। यह कार्य केवल धर्म और धर्म के द्वारा ही सभव है। धर्म ही मानव हृदय में सुप्त परमात्मा को जगा सकता है। धर्म की प्रेरणा से ही मनुष्य हँसते हँसते जगत-हितार्थ अपने जीवन तक की आहुति देने को प्रस्तुत हो जाता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक युग में धर्म की जितनी आवश्यकता है, उतनी कदाचित, इतिहास के किसी भी युग में नहीं था। धर्म की इस महती आवश्यकता का अनुभव कर जीवन में धर्म के आचरण द्वारा हम मानव समाज की महती सेवा कर सकते हैं।

# श्री चैतन्य महाप्रभु (२७)

*स्वामी सारदेशानन्द*

(ब्रह्मलीन लेखक की रचनाओं मे मूल बॅगला मे लिखित उनका 'श्रीश्री चैतन्यदेव' ग्रन्थ महाप्रभु की जीवनी पर एक प्रामाणिक रचना मानी जाती है। उसी का हिन्दी अनुवाद यहाँ धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

## ९. पुरीवास, अन्तरंगों की शिक्षा, प्रचारक-संगठन और संघ-स्थापन

इस बार भी रथयात्रा के पूर्व गौड़ीय भक्तों ने हरिनाम-सकीर्तन करते हुए पुरी में प्रवेश किया। चैतन्यदेव ने स्वय ही अग्रसर होकर उनका स्वागत किया। आचार्य अद्वैत, प्रभुपाद नित्यानन्द, भक्ताग्रणी श्रीवास आदि अन्तरग भक्तों के साथ काफी काल बाद मिलन होने के कारण उनमें जो अपार प्रेम दीख पड़ा उसकी माधुरी वर्णनातीत है। चैतन्यदेव तथा गौड़ीय भक्तों की उपस्थिति के फलस्वरूप इस वर्ष रथयात्रा तथा तत्सम्बन्धित अन्य उत्सव बड़े धूमधाम के साथ सम्पन्न हुए। पहले के समान ही इस बार भी महाप्रभु ने गौड़ीय भक्तों के साथ श्री मन्दिर में जाकर महासकीर्तन और नृत्य किया। रथयात्रा के पूर्व भक्तों के साथ गुण्डिचा-भवन में जाकर वहाँ सफाई करके उन्होंने सबको आनन्दित किया और यात्रा के समय रथ के आगे आगे नृत्य-गीत-कीर्तन तथा प्रेमभाव की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करके लाखों यात्रियों के नयन-मन को सार्थक किया। इस महानन्द के बीच चार महीने का समय क्षण भर के समान बीत गया। इसके पश्चात् भक्तगण उनकी श्रीमूर्ति हृदय में बसाकर नेत्रों से अश्रु बहाते अपने देश को लौट गये।

रूप और अनुपम को प्रयाग से काशी आने पर पता चला कि चैतन्यदेव नीलाचल लौट गये हैं। उनका दर्शन करने को दोनों के प्राण व्याकुल थे। सलाह करने के बाद दोनों भाई बंगाल के रास्ते पुरी को चल पड़े । गौड़ में पहुँचकर अनुपम बीमार पड़ गये। फिर कुछ दिन बाद श्रीरामचन्द्र के परम भक्त अनुपम ने 'तारक-ब्रह्म' रामनाम का जप करते हुए गंगा के तट पर प्राणत्याग कर दिया। अपने परम प्रिय और अनुगत छोटे भाई की अस्वस्थता तथा देहत्याग के कारण रूप को कुछ काल के लिए गौड़ में ठहर जाना पड़ा था। भ्राता का अन्तिम कृत्य पूरा कर लेने के बाद वे पुनः नीलाचल की ओर चल पड़े और यथासमय पुरी जा पहुँचे। दूर से ही श्री जगन्नाथजी

के मन्दिर के शिखर-चक्र का दर्शन करके रूप ने साष्टाग प्रणाम किया और प्रेमाश्रु बहाते हुए भक्तिविह्वल चित्त के साथ वहीं स्तुति-प्रार्थना करने लगे, परन्तु मन्दिर के समीप नहीं गये। तदुपरान्त वे ढूँढ़ते हुए चैतन्यदेव की कुटिया में पहुँचे और उनके चरणों में प्रणत हुए।

महाप्रभु ने उल्लसित हृदय से रूप को सीने से लगाकर प्रेमालिंगन किया। उनका वह स्नेहस्पर्श पाकर रूप का सारा दुःख-कष्ट क्षण भर में तिरोहित हो गया। आपस में कुशल-मंगल पूछने के बाद चैतन्यदेव ने उपस्थित भक्तों के साथ उनका परिचय कराया। अनुपम के देहत्याग का संवाद पाकर महाप्रभु के मन में दुःख हुआ, परन्तु उनके अन्तिम समय के उच्चभाव के बारे में सुनकर वे अतीव हर्षित हुए और उनकी उच्च प्रशसा करने लगे। सनातन के साथ उन दोनों की भेंट नहीं हो सकी थी, यह जानकर चैतन्यदेव को खेद हुआ। हरिदास की कुटिया में ही रूप के भी निवास की व्यवस्था कर दी गयी। चैतन्यदेव के आदेशानुसार गोविन्द प्रतिदिन हरिदास के समान ही उन्हे भी महाप्रसाद दे आते थे। चैतन्यदेव प्रतिदिन प्रातःकाल नियमित रूप से जगन्नाथजी के मन्दिर से लौटकर हरिदास की कुटिया में आते और उनकी कुशलता का समाचार पूछकर, कुछ काल उनके पास सत्सग में बिताने के बाद समुद्रस्नान करने चले जाते। अब रूप गोस्वामी को भी पाकर उनके आनन्द की सीमा न रही, इसीलिए हरिदास की कुटिया में दोनों के साथ सच्चर्चा करते हुए उनका बहुत-सा समय बीतने लगा।

रथयात्रा के समय चैतन्यदेव का अपूर्व भावावेश देखकर और भक्तों के मुख से उनके बारम्बार एक सुमधुर श्लोक[1] की आवृत्ति की बात सुनकर रूप का मन उस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उक्त कविता का मर्म एकमात्र दामोदर स्वरूप ही जानते थे। भाविक रसज्ञ और कविकुल-शिरोमणि रूप को उस कविता का मर्म और रसमाधुर्य हृदयगम करते देर न लगी। उन्होंने उसी भाव का अनुसरण करते हुए थोड़े दिन बाद ही स्वय भी उसी के परिपूरक

---

१ रथयात्रा के समय चैतन्यदेव 'काव्यप्रकाश' नामक एक काव्यालंकार विषयक ग्रन्थ के एक मधुर रसात्मक श्लाक का पाठ करते हुए अपने अन्तर का भाव श्री जगन्नाथ को निवदित किया करत थे। उक्त श्लोक का भाव निम्न प्रकार है – "कोई सुन्दर नारी आक्षप करते हुए कहती है 'जिन्होने मेरा मन हरण कर लिया था वे ही अब मेरे पति है और उनका वह प्राकृतिक सौंदर्य अब भी वैसे ही विद्यमान है तथापि यौवन के आरम्भ मे जिस स्थान पर हम दोनो का प्रथम मिलन हुआ था, उसी स्थान पर पुनः मिलने क लिए मेरा चित्त समुत्कण्ठित है ।"

एक श्लोक की रचना की और उसे ताड़पत्र पर लिख छप्पर में खोंसकर वे समुद्रस्नान को चले गये। उसी समय चैतन्यदेव रूप से मिलने उनकी कुटिया में आये और दैवात् उनकी दृष्टि उस ताड़पत्र पर जा पड़ी। कुतूहलवश जब उन्होंने वह पत्र हाथ में लेकर पढ़ा, तो उनके विस्मय की सीमा न रही। उनका गोपनीय भाव जो एकमात्र दामोदर को छोड़ और किसी को ज्ञात न था, उसे रूप ने ठीक ठीक समझकर अति सुन्दर भाषा में एक मधुर श्लोक रच डाला है, यह देख महाप्रभु का अन्तर आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। इसी बीच स्नानोपरान्त लौटकर रूप ने उनकी चरण-वन्दना की। प्रेमाविष्ट चैतन्यदेव ने पहले तो दिखावटी रोष प्रकट करते हुए और तत्पश्चात् उन्हें प्रेमालिंगन करते हुए प्रश्न किया, "तुमने मेरे अन्तर का गोपनीय भाव जान कैसे लिया ?" रूप संकोचपूर्वक मौन रह गये। चैतन्यदेव ने उनकी कवित्वशक्ति और रसज्ञान की उच्च प्रशंसा करते हुए उस श्लोक के गुण-दोष की समीक्षा करने के लिए उसे ले जाकर महापण्डित दामोदर स्वरूप के हाथ में दे दिया। अलंकार-शिरोमणि दामोदर ने बड़े लगन से रूपकृत उस श्लोक पर विचार-विश्लेषण कर उसके गहन रस का आस्वादन किया और अत्यन्त प्रशंसापूर्वक चैतन्यदेव से बोले, "श्री रूप निश्चय ही आपके अतिप्रिय अन्तरंग हैं।"[२] वास्तव में रूप चैतन्यदेव के विशेष कृपापात्र हुए और भक्तितत्व व रसशास्त्र में उन्हें असाधारण अधिकार प्राप्त हुआ था।

श्रीकृष्ण-लीलातत्व की व्याख्या तथा भगवत्प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति – मधुर रस की उच्चतम अवस्थाओं के प्रचार हेतु चैतन्यदेव की इच्छानुसार रूप ने पहले से ही संस्कृत भाषा में 'विदग्धमाधव' तथा 'ललितमाधव' नाम के दो नाटकों की रचना आरम्भ की थी और अब वे पुरी निवासकाल में भी अवकाश के समय थोड़ा-बहुत लिखा करते थे। उनके नाटकों के गुणदोष पर चर्चा करने के लिए एक दिन चैतन्यदेव ने उनसे पण्डित-भक्तों के समक्ष उन्हें पढ़कर सुनाने का अनुरोध किया। लज्जा व संकोच के कारण पहले तो

---

२. व्रजगोपिका के भाव मे विभोर होकर रथ पर जगन्नाथजी का दर्शन करने के पश्चात् चैतन्यदेव, काफी काल बाद कुरुक्षेत्र मे श्रीकृष्ण से मिलनेवाली गोपियो के अन्तर के भाव का अनुभव करते हुए उक्त श्लोक की आवृति करते थे। श्रीरूप ने उसे समझकर उसी भाव के एक अन्य श्लोक की रचना की, जिसका मर्म इस प्रकार है – काफी समय तक विरह का अनुभव करने के बाद श्रीकृष्ण के साथ कुरुक्षत्र मे भेट होने पर श्रीमती राधा वृन्दावन मे यमुनातट के मधुर-मिलन के दिनो की बाते स्मरण करते हुए सखियो के समक्ष पुनः उसी प्रकार के मिलन हेतु आकांक्षा व्यक्त करती हैं।

रूप उन्हें सुनाने को सहमत नहीं हुए परन्तु सबके बारम्बार अनुरोध की उपेक्षा न कर पाकर एक दिन उन्होंने अपनी रचनाएँ पढ़कर सुनायी। ग्रन्थ का मंगलाचरण तथा गुरु-इष्ट प्रणाम आदि का पाठ होते ही श्रोतृवृन्द का अन्तर आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। उनकी भाषा, भाव और कवित्वशक्ति का आस्वादन कर सभी लोग मुग्ध हुए। श्री रूप की अद्‌भुत कवित्त्वशक्ति, तत्त्वज्ञान और रसबोध का निदर्शन पाकर राय रामानन्द, दामोदर स्वरूप तथा सार्वभौम आदि महान पण्डितों के अन्तर में भी विस्मय का उदय हुआ और सबने उनकी भूरि भूरि प्रशसा की। तदुपरान्त चैतन्यदेव के आदेशानुसार स्वरूप दामोदर ने अलंकार शास्त्र के आधार पर नाटक के लक्षणादि पर विचार करते हुए श्री रूप की कवित्व शक्ति पर विशेष चर्चा की। इसके फलस्वरूप वहाँ समवेत भक्तों के हृदय में कवि के प्रति गहन श्रद्धा का उदय हुआ ।

पुरी में चैतन्यदेव के पास दस महीने निवास करके उनके उपदेशानुसार साधन-भजन में डूबकर रूप की आन्तरिक अभिलाषा पूर्ण हुई और उन्हें अपना मानव-जन्म सार्थक बोध होने लगा। इसी काल में उन्हें विशेष रूप से शिक्षा देकर धर्मसस्थापक संन्यासी-शिरोमणि ने उन्हें अपने भक्तिधर्म के प्रचारक और संरक्षक आचार्य के रूप में प्रशिक्षित किया। तदुपरान्त महाप्रभु ने उन्हें सनातन के साथ व्रजभूमि में रहकर वहाँ के लुप्त तीर्थों का उद्धार और उत्तर-पश्चिम अंचल मे भगवदभक्ति एवं प्रेमधर्म का प्रचार करने का आदेश देकर विदा किया। वह आदेश शिरोधार्य करके रूप पुरी से चलकर गौड़ जा पहुँचे। वहाँ पर उन्हे अपने घर-द्वार तथा सम्पत्ति की व्यवस्था करने में करीब एक साल लगा। अपनी विपुल सम्पदा का कुछ भाग उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों के बीच वितरित कर दिया, कुछ अश देवस्थानों साधु-संन्यासियों व गरीब-दुखियों के सेवार्थ दान किया और बाकी सब कुछ अनुपम के पुत्र श्री जीव को सौंप दिया। इस प्रकार सुव्यवस्था करके, ससार का अपना सारा बखेड़ा मिटाने के बाद उन्होने वृन्दावन की ओर प्रस्थान किया। चैतन्यदेव के आदेशानुसार रूप और सनातन दोनो भाइयों ने व्रज में रहकर उत्तर-पश्चिमी अचल में प्रेमभक्ति की विमल धारा प्रवाहित की थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दिनों अपने अन्तरग भक्तों को शिक्षा देनें उन्हे साधन-भजन में उत्साहित करने तथा धर्मप्रचारक आचार्य के रूप में उनका जीवन गठन करने की ओर चैतन्यदेव का विशेष ध्यान था। हरिदास

नाम के एक संसारत्यागी और वैरागी बगाली युवक महाप्रभु के ही आश्रय में पुरीवास करते हुए सत्सग व साधन-भजन में कालयापन कर रहे थे। हरिदास का कण्ठस्वर बड़ा मधुर था और वे बड़ा सुन्दर कीर्तन करते थे। उनका सुमधुर कीर्तन सुनकर चैतन्यदेव को बड़ा आनन्द होता था और इस कारण हरिदास उनके विशेष स्नेहभाजन थे। भक्तों के बीच वे 'छोटे हरिदास' के रूप में सुपरिचित थे। उसी वर्ष स्वरूप दामोदर के परमबन्धु, सुपण्डित और भक्त भागवताचार्यजी ने चैतन्यदेव का संग करने की इच्छा से पुरीधाम में आकर कुछ काल निवास किया था। भक्तिमान आचार्य के मन में अपने हाथ से पकाकर संन्यासी को भिक्षा देने की अभिलाषा हुई और वे इसके लिए सामग्री जुटाने लगे। उत्तम कोटि का महीन चावल न मिल पाने के कारण आचार्य के मन में बड़ा खेद था और यह इच्छा उन्होंने छोटे हरिदास के सामने व्यक्त कर दी। इस पर वे पुरी के विशिष्ट भक्त शिखी माहिती के घर जाकर उनकी बहन श्रीमती माधवी दासी से भिक्षा में थोड़ा सा सुगन्धित महीन चावल माँग लाये। श्रीमती माधवी अति उच्च श्रेणी की साधिका थीं तथा चैतन्यदेव के प्रति विशेष भक्ति करती थीं। कहते हैं कि पुरी में चैतन्यदेव की उच्च अवस्था तथा प्रेमभक्ति का तत्त्व समझ पाने में सक्षम केवल 'साढे तीन जन'[३] ही थे – स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, शिखी माहिती और उनकी बड़ी बहन माधवी दासी।

संन्यासी को निमन्त्रण देने के पश्चात् भागवताचार्य ने निर्दिष्ट दिन उस सुगन्धित चावल का भात तथा विविध प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये। यथासमय चैतन्यदेव भी भिक्षार्थ आ पहुँचे । आचार्य ने अतीव भक्तिपूर्वक अपने परमप्रिय संन्यासी का स्वागत कर बैठाया और अपने ही हाथों परोसते हुए उन्हें प्रीतिपूर्वक खिलाने लगे। उक्त समस्त खाद्यसामग्री का आस्वादन कर महाप्रभु बडे सन्तुष्ट होकर उसकी प्रशसा करने लगे और फिर उत्सुकतापूर्वक पूछा, "भट्टाचार्य, इतना अच्छा महीन और सुगन्धित चावल आपको कहाँ प्राप्त हुआ ?" उत्तर में आचार्य बोले, "छोटे हरिदास जाकर माधवी दासी से यह चावल माँग कर लाये थे।" चैतन्यदेव ने चावल की बडी प्रशसा तो की, परन्तु भिक्षा के बाद कुटिया में लौटकर उन्होंने अपने सेवक गोविन्द को गम्भीरतापूर्वक आदेश दिया

३. प्राचीन गणना प्रणाली मे पुरुष से महिलाओं का अलग गिनने के लिए उन्हे आधा लिखने की प्रथा थी। इसी कारण तीन पुरुष और एक महिला को यहां 'साढे तीन जन' कहा गया है।

"आज से छोटे हरिदास को यहाँ मत आने देना।"

आदर्श संन्यासी चैतन्यदेव जैसे स्वयं पूर्णरूपेण कामिनी-काचन से दूर रहते थे, वैसे ही उनके त्यागी-भक्त भी उस आदर्श का ठीक-ठीक पालन करते हैं अथवा नहीं, इस विषय में तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। कामिनी-काचन से सम्पर्क रखना ही त्यागी के सर्वनाश का कारण बनता है। श्रीमद्भागवत में तो भक्तिमती स्त्रियों से सम्पर्क रखना भी त्यागी के लिए तृणाच्छादित कूप के समान बडा विपत्तिपूर्ण कहा गया है । त्यागी-वैरागी हरिदास का माधवी दासी के पास आना-जाना और उनसे बातचीत करना चैतन्यदेव को बड़ा गर्हित अपराध प्रतीत हुआ, इसीलिए उन्होंने सबको शिक्षा देने के निमित हरिदास के लिए इतने कठोर दण्ड की व्यवस्था की।

हरिदास अन्य दिनों के ही समान उस दिन भी अपराह्न में कीर्तन सुनाने को आये, परन्तु उन्हें भीतर प्रवेश की अनुमति नहीं मिली। गोविन्द के मुख से चैतन्यदेव के कठोर आदेश की बात सुनकर उनके प्राण सिहर उठे, काफी अनुनय-विनय का भी कोई फल नहीं निकला। अन्त में निरुपाय होकर हरिदास भग्न हृदय के साथ अपने निवासस्थान को लौट आये और दरवाजे में भीतर से किल्ली लगाकर उपवासी हो कमरे में पड़े रहे। जब यह बात भक्तों को ज्ञात हुई तो उन लोगों ने महाप्रभु के पास जाकर हरिदास का अपराध पूछा। चैतन्यदेव ने सारी घटना बताते हुए बड़े क्षोभपूर्वक कहा, "जो वैरागी होकर भी नारी के साथ सम्भाषण करता है, मैं उसका चेहरा तक नहीं देख सकता। इन्द्रियाँ विषय-भोग चाहती हैं, उनका निग्रह कठिन है, काष्ठ की भी नारी-मूर्ति मुनिजन का मन हरण कर लेती है। मर्कट वैराग्य के चलते क्षुद्र जीव नारियो से बातें करके इन्द्रियों को खुली छूट देते रहते हैं।" भक्तों ने अतीव विनयपूर्वक अनुरोध किया, "हरिदास को पर्याप्त शिक्षा मिल गयी है, अब वह कभी ऐसा कर्म नहीं करेगा। इस बार उसे क्षमा कर दीजिए।" स्वरूप तथा अन्य विशिष्ट भक्तो ने भी चैतन्यदेव के मन को पिघलाने का बड़ा प्रयास किया, परन्तु इसका कोई फल नहीं निकला। महाप्रभु ने कहा, "मेरा मन मेरे वश मे नहीं है। वह नारी से सम्भाषण करनेवाले वैरागी से सम्पर्क नहीं रख सकता। वृथा बाते छोड़कर आप सब जाकर अपने अपने कार्य में लग जायँ। यदि आपने पुनः यह प्रसग उठाया तो मुझे यहाँ न पायेंगे। उनका भाव देखकर भक्तगण भीतचित्त के साथ अपने अपने स्थान पर चले गये।

इधर छोटे हरिदास तीन दिनों तक स्नान-आहार आदि त्यागकर कमरे के भीतर ही पड़े रहे। इस पर भक्तों के अन्तर में बड़ा खेद हुआ, फिर सबने मिलकर सोच-विचार करने के बाद श्रीमत् स्वामी परमानन्द पुरी को चैतन्यदेव क़े पास भेजा। उन लोगों को उम्मीद थी कि पुरीजी के कहने पर वे शायद नरम हो जायँ, क्योंकि उनके प्रति महाप्रभु की अतीव श्रद्धा थी। चैतन्यदेव ने पुरीजी का भक्तिपूर्वक अभिवादन किया और उन्हें आसन देते हुए ससम्मान पूछा कि क्या वे किसी उद्देश्य से आये हैं। परमानन्दजी ने अपने आगमन का कारण बताते हुए छोटे हरिदास को क्षमा कर देने का विशेष अनुरोध किया। उनकी बातें सुनते ही चैतन्यदेव के मुखमण्डल पर गम्भीरता का भाव छा गया और वे स्वामीजी से बोले, "मेरे कारण आप लोगों को असुविधा हो रही है। अनुमति मिले तो मैं गोविन्द के साथ जाकर अलालनाथ में निवास करूँ और आप सभी छोटे हरिदास के साथ लेकर यहाँ आनन्दपूर्वक रहें।"

चैतन्यदेव गोविन्द को बुलाकर अलालनाथ जाने की तैयारी कर रहे हैं, यह देख परमानन्दजी घबरा गये और मधुर वाणी में उन्हें शान्त और मना करके के पश्चात विदा हुए।

और कोई उपाय न देख स्वरूप भक्तों को साथ लिए छोटे हरिदास की कुटिया में जा पहुँचे। सबका आश्वासन और सान्त्वना की वाणी सुनकर हरिदास के मन में आशा जगी। उन्होंने द्वार खोलकर भक्तों के साथ वार्तालाप किया और तदुपरान्त स्नान-आहार करके उनका शरीर स्वस्थ हुआ। तब से छोटे हरिदास दूर से ही, विशेषकर जब वे समुद्रस्नान को जाते तभी चैतन्यदेव का दर्शन तथा उन्हें प्रणाम करते। परन्तु महाप्रभु उनकी ओर बिल्कुल भी दृष्टि नहीं फेरते थे। हरिदास को उम्मीद थी कि धीरे धीरे वे उन पर प्रसन्न हो जाएँगे, पुनः बातचीत करेंगे, परन्तु काफी दिन बीत जाने के बाद भी चैतन्यदेव उनकी उपेक्षा ही करते रहे। वे उन्हें देखकर भी अनदेखा कर जाते, सामने पड़ जाने पर भी किनारे से निकल जाते, एक शब्द तक न बोलते। हरिदास के दिल में अपने जीवन के प्रति धिक्कार का भाव उत्पन्न हुआ और वे बिना किसी को बताए गोपनीयतापूर्वक उत्तर-पश्चिम की ओर चले गये।

इसके कुछ काल बाद नववर्ष का आगमन हुआ। वर्ष के प्रथम दिन भक्तगण चैतन्यदेव को दर्शन-प्रणाम कर उनका शुभाशीर्वाद लेने को एकत्र हुए थे। नये-पुराने, छोटे-बड़े सभी भक्तों को समवेत देखकर उनके अन्तर

में बड़ा आनन्द हो रहा था। आज उनके हृदय की करुणा सैकड़ों धाराओं से होकर निःस्रित हो रही थी। भक्तों की निज निज अभिलाषा के अनुसार वे सबकी मनोवाछा पूर्ण कर रहे थे। उस समय इस आनन्द-मेले के दौरान अपने अश्रित भक्त छोटे हरिदास के प्रति उनके अन्तर में संचित स्नेहभाव अचानक ही अभिव्यक्त हो उठा और व्याकुल होकर महाप्रभु कह उठे, ' छोटा हरिदास कहाँ है ? उसे बुला लाओ।'' इतने दिनों पश्चात हरिदास के प्रति उनका लगाव देखकर भक्तों का हृदय विगलित हो उठा। वे लोग करुण स्वर में बोले, ''प्रभो ! छोटे हरिदास बिना किसी को कुछ बताये गोपनीयतापूर्वक पुरी छोड़कर कहीं अन्यत्र चले गये है, हमें उनकी कुछ भी खबर नहीं।'' हरिदास के अज्ञातवास का संवाद पाकर चैतन्यदेव मर्माहत हो गये।

छोटे हरिदास पुरी से निकलकर तीर्थादि दर्शन करते हुए क्रमशः तीर्थराज प्रयाग जा पहुँचे थे और कुछ काल तक उस मनोरम स्थान में निवास करते हुए भगवद्भजन में कालातिपात करने लगे। अनित्य संसार के लिए उनके चित्त में बिल्कुल भी स्पृहा न थी और अब चैतन्यदेव के संग से वंचित होकर उन्हें जीवनधारण से भी वितृष्णा हो गयी। तत्त्वज्ञ महात्माओं द्वारा स्वेच्छया देहविसर्जन की प्रथा इस देश में प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। जीव को सर्वापेक्षा प्रिय इस शरीर को वे साँप के केंचुल के समान अनायास ही त्याग देते है। सुनने में आता है कि इस प्रकार कोई कोई हिमालय में, त्रिवेणी मे, गोवर्धन पर अथवा जगन्नाथ के रथचक्र के नीचे देहत्याग कर चुके हैं। देहधारण रूपी विडम्बना असह्य हो जाने पर एक दिन हरिदास ने चैतन्यदेव के पादपद्मो का ध्यान तथा इष्टमन्त्र का स्मरण करते हुए त्रिवेणी-सगम में अपना शरीर विसर्जित कर अभीष्ट गति प्राप्त की।

पुरी के भक्तगण हरिदास के लिए विशेष चिन्तित थे, एक वर्ष बाद उनके देहत्याग का सवाद पहुँचने पर वे सभी बड़े दुखी हुए। चैतन्यदेव ने 'सर्वकर्मफलभाक्पुमान्' – यह शास्त्रवाक्य उच्चारण करते हुए त्यागी भक्तो से कहा, नारी-दर्शन करने का यही प्रायश्चित्त है। हरिदास के जीवन की इस घटना से सबको ऐसी शिक्षा मिली कि उन लोगों ने 'स्वप्न में भी नारी-सम्भाषण' छोड़ दिया।

(क्रमशः)

# स्वामी विवेकानन्द की प्लेग-सेवा (२)

*स्वामी विदेहात्मानन्द*

१८९८ ई. में जब कलकत्ते में प्लेग आया तो केवल आतक एवं भगदड़ मचाकर शीघ्र ही शान्त हो गया था, परन्तु अगले वर्ष मार्च में जब इसका पुनरागमन हुआ तो क्रमशः इसने महामारी का रूप धारण कर लिया। परन्तु इस बार स्वामीजी पहले से ही तैयार थे। मार्च के अन्तिम सप्ताह में उनके निर्देशानुसार इस संकट से निपटने के लिए रामकृष्ण मिशन प्लेग-सेवा के नाम से एक संकट से निपटने के लिए रामकृष्ण मिशन प्लेग-सेवा के नाम से एक कमेटी का गठन किया गया। इसकी सचिव थीं भगिनी निवेदिता, मुख्य अधिकारी स्वामी सदानन्द और सहकारी हुए स्वामी शिवानन्द, नित्यानन्द तथा आत्मानन्द।

### भगिनी निवेदिता का कार्य

३१ मार्च से भगिनी निवेदिता और स्वामी सदानन्द अपनी पूरी शक्ति के साथ इस कार्य में लग गये। सर्वप्रथम भगिनी निवेदिता ने इस योजना के प्रचार तथा धन-सग्रह का बीड़ा उठाया। कमेटी गठन करते समय स्वामीजी तथा रामकृष्ण मिशन के सदस्यों के बीच जो चर्चा हुई थी, उसी के आधार पर उन्होंने "The Plague in Calcutta" (कलकत्ता में प्लेग) शीर्षक एक लेख लिखा, जो 'इण्डियन नेशन' के २८ मार्च के अक में प्रकाशित हुआ। इसमे प्लेग से सम्बन्धित सभी समस्याओं पर विचार किया गया था एवं इसके उपचार विषयक कुछ समाधान सुझाते हुए जीवाणुनाशक औषधियों तथा सफाई के महत्व पर प्रकाश डाला गया था। फिर ६ अप्रैल के 'स्टेट्समैन' में उनका दूसरा लेख छपा – "The cleansing of calcutta" (कलकत्ते की सफाई)। इस आलेख में उन्होंने बस्तियों की सफाई की आवश्यकता पर बल दिया था और मिशन द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों की सूचना देते हुए जनता से और विशेषकर युरोपीय समुदाय से आर्थिक सहायता की अपील की थी।

भगिनी निवेदिता के उन्हीं दिनों (सम्भवतः ५अप्रैल को) लिखे एक पत्र से इस कार्य-सम्बन्धी कुछ विवरण मिलते हैं। वे लिखती हैं – ''बाहर सदानन्द बड़े सबेरे से ही एक वीर के समान भंगियों की अपनी टोली के कार्य का सचालन करते हैं। उनके कार्य के फलस्वरूप ये गलियाँ तथा बस्तियाँ अब

बिल्कुल अलग ही दीख पड़ती हैं। पिछली रात प्लेग विषयक बंगाली पर्चे (छपकर) आ गये। आज हम लोग उनका तथा रोगाणुनाशक औषधियों का वितरण करते रहे। पिछली रात दो घण्टे तक वे एक दरवाजे पर बैठे, उधर से गुजरनेवाले हर व्यक्ति को पर्चे बाँटते रहे। मैं एक सफाई-कोष प्रारम्भ करने तथा अंग्रेजी अखबारों में सूचनाएँ प्रकाशित कराने का प्रयास करती रही। ...विशाल स्तर पर सफाई की हमारी योजना ही एकमात्र समाधान है, परन्तु कौन इसे कार्यरूप में परिणत करेगा। हमारे अपने संघ में भी सदानन्द के जैसा दूसरा कौन है? जब तक लोगों में उत्साह रहेगा, उनमें काम चलाने की प्रतिभा है। भंगियों का दल उनसे प्रेम करता है, महिलाएँ उनका स्वागत करती हैं, लड़के उनके मतानुसार कार्य करते हैं और जनता उन पर विश्वास करती है। मुझे उस दिन की आशका है जबकि वे थककर चूर हो जाएँगे, परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि कभी ऐसा हुआ, तो भी वे पुनः काम में लग जाएँगे।

भगिनी निवेदिता ने प्लेगग्रस्त रोगियों के उपचार तथा सेवा में जैसा कठोर परिश्रम किया था, एक प्रत्यक्षदर्शी डॉ.राधागोविन्द कर ने इसका किंचित विवरण दिया है। वे लिखते है – "उसी (प्लेग के) समय चैत्र मास के एक दिन दोपहर को मरीज देखकर घर लौटने पर मैंने पाया कि द्वार पर रखी धूल-धुसरित कुर्सी पर एक युरोपीय महिला बैठी हुई हैं। वे भगिनी निवेदिता थीं और एक समाचार पाने के लिए बड़ी देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहीं थीं। उस दिन प्रातःकाल मैं बागबाजार की किसी बस्ती मे एक प्लेगग्रस्त बच्चे को देखने गया था। उसी के विषय में पूछताछ एवं व्यवस्था-ग्रहण के सिलसिले में भगिनी निवेदिता का आगमन हुआ था। मैंने बताया कि रोगी की हालत संकट में है। मैंने उनके साथ चर्चा की कि उस आदिवासी बस्ती में वैज्ञानिक रीति से रोगी की परिचर्या कैसे सम्भव है और उन्हें विशेष रूप से सावधानी बरतने को कहा। अपराह्न मे जब मैं पुनः उस रोगी को देखने गया तथा मैंने पाया कि भगिनी निवेदिता उसी अस्वास्थ्यकर मुहल्ले में और नम-जीर्ण कुटिया में रोगग्रस्त बच्चे को गोद में लिए बैठी हैं। अपना आवास छोडकर दिन-रात वे उसी कुटिया मे रोगी की सेवा में लगी रहीं। उस घर को सफाई की जरूरत थी। उन्होने स्वयं ही एक छोटी-सी सीढी लेकर उसकी चूने से पुताई की थी। रोगी की मृत्यु सुनिश्चित जानकर भी उनकी सेवा में शिथिलता नहीं आई। दो दिन बाद वह बालक इन करुणामयी की स्नेह-उष्ण गोद में ही

चिरनिद्रा में विलीन हुआ।"

डॉ. कर ने यह भी बताया है कि उन दिनों भगिनी निवेदिता की यह करुणामयी मूर्ति बागबाजार की हर बस्ती में दीख पड़ती थी। उन दिनों दुग्ध तथा फल-मूल ही उनका आहार था, परन्तु एक रोगी के औषधि-पथ्य आदि का खर्च चलाने के लिए उन्होंने कुछ काल के लिए दूध का परित्याग कर दिया था। इस प्रकार उन्होंने न जाने कितने रोगियों की व्यक्तिगत रूप से सेवा की होगी। स्वामी विवेकानन्द भगिनी निवेदिता द्वारा तथा उनके नेतृत्व में हो रहे कार्य से अत्यन्त सन्तुष्ट थे, परन्तु उन्होंने रोगियों की सेवा की तुलना में सफाई के कार्य को प्रमुखता देने को कहा। विख्यात इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि कैसे एक दिन सुबह उन्होंने एक श्वेतांग महिला को हाथों में झाड़ू तथा टोकरी लिए बागबाजार की एक बस्ती की सफाई करते हुए देखा था।

अपने १९ अप्रैल के एक पत्र में भगिनी निवेदिता ने इन कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है –

३१ मार्च, गुडफ्राइडे – सदानन्द ने सात भंगियों की एक टोली के साथ बस्तियों की सफाई आरम्भ की, स्वामीजी ने हमें सौ रुपये दिये हैं।

६ अप्रैल, गुरुवार – स्टेट्समैन तथा इंग्लिशमैन में मेरा पत्र प्रकाशित हुआ। डॉ. नील्ड कुक मुआयना करने आये, आर्थिक सहायता आनी शुरू हुई।

१० अप्रैल, सोमवार – हमने २३५ रुपये और भी एकत्र कर लिये हैं और अपने कर्मीदल में ५ भंगियों तथा १ संन्यासी का योग कर लिया है।

९ अप्रैल, सोमवार तथा १५अप्रैल, शनिवार को – जिले के सरकारी प्लेग अधिकारी डॉ. महोनी ने मित्रतापूर्ण भाव से हमारे कार्य का निरीक्षण किया।

१७ अप्रैल, सोमवार को – सरकार के उच्चाधिकारियों के आदेश पर नगरपालिका के अध्यक्ष (मि.ब्राइट) हमारा कार्य देखने आये, उसे 'Model' (आदर्श) बताया और मुझसे कहा कि धनाभाव की अवस्था में मैं उन्हें सूचित करूँ। सदानन्द का कहना है कि इन अधिकारियों का ऐसा मनोभाव अति उच्च प्रशसा का द्योतक है।

और अब स्वामीजी ने निर्धारित किया है कि २२ तारीख, शनिवार को उनकी अध्यक्षता में मुझे कलकत्ते के छात्रों के समक्ष इस विषय पर व्याख्यान देना होगा ।

## स्वामी विवेकानन्द का उद्‌बोधन

२२अप्रैल को क्लासिक थियेटर में भगिनी निवेदिता का 'प्लेग और विद्यार्थियों का कर्तव्य' विषय पर प्रेरणादायी व्याख्यान हुआ, जिसे सुनने के लिए विश्वविद्यालय के छात्र बहुत बडी सख्या में उपस्थित थे। कुछ युरोपीय सज्ञन तथा अनेक प्राध्यापक भी श्रोता के रूप में आये थे। सभा के आरम्भ में अध्यक्ष के रूप में बोलते हुए स्वामीजी ने तुरन्त और निर्णयात्मक क्रियाशीलता दिखाने की आवश्यकता की बात छात्रों के मन में बिठा दी। दुर्भाग्यवश स्वामीजी का पूरा अध्यक्षीय भाषण संवादपत्रों में प्रकाशित नहीं हुआ। उन्होंने इस अवसर पर जो कुछ कहा, उसका साराश इस प्रकार है –"अब तक ढेर सारी बातें और सिद्धान्त बघारना ही चलता रहा है, परन्तु प्लेग को रोकने की दिशा में बंगाली लोगों द्वारा कोई व्यावहारिक कार्य नहीं हो सका है। हाल ही में एक अंग्रेज सवाददाता की कठोर निन्दा एवं आलोचना के कारण बगाली लोग भड़क गये हैं, परन्तु जब तक वे अपने आलस्य को झाड़-फेंककर सच्चे व्यावहारिक कर्म द्वारा अपनी मनुष्यता प्रमाणित नहीं करते – यह प्रमाणित नहीं करते कि वे कॉच की आलमारी में सजी हुई कठपुतलियाँ मात्र नहीं हैं – तब तक वे न तो अपने ऊपर लगे हुए लांछन को ही मिटा सकते हैं और न ही अपने देश के अपयश को दूर कर सकते हैं।" भगिनी निवेदिता ने अपने व्याख्यान में रामकृष्ण मिशन द्वारा किये जा रहे कार्यों का ब्यौरा दिया, सफाई की आवश्यकता तथा उसकी समस्याओं से अवगत कराया और छात्रों से अनुरोध किया कि वे आगे आकर इस कार्य में सहयोग दें।

इस सभा के पश्चात् १५छात्रों ने स्वयसेवक के रूप में अपना नाम लिखाया। उन्हें मिलाकर एक टोली बना ली गई, जो चुनी हुई बस्तियों में द्वार द्वार पर जाकर सफाई सम्बन्धी साहित्य तथा सलाह आदि देकर कार्य में सहायता देने लगी। यह टोली प्रति रविवार को मिशन के कलकत्ता कार्यालय में एकत्र होकर अपने कार्य की समीक्षा तथा भावी कार्य की योजना बनाती थी।

## स्वामी सदानन्द का नेतृत्व

स्वामीजी के प्रथम सन्यासी शिष्य स्वामी सदानन्द ने इस कार्य का नेतृत्व ग्रहण किया था। अपना जीवन दाँव पर लगाकर कठोर परिश्रम करते हुए उन्होने सेवा का एक अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्हीं की टोली के एक स्वयंसेवक श्री कुमुदबन्धु सेन ने अपने संस्मरणों में उनके कार्य का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। वे लिखते हैं –

''स्वामी सदानन्द महाराज के साथ मेरा परिचय हुआ था, परन्तु कलकत्ते की प्लेग-सेवा के दौरान ही मुझे उनके साथ घनिष्ठ रूप से मिलने-जुलने का सुअवसर मिला। रामकृष्ण मिशन की प्लेग-सेवा के इतिहास में स्वामी सदानन्द का नाम चिर-स्मरणीय रहेगा। सच कहें तो वे इस कार्य के प्राणस्वरूप थे। मैं प्रतिदिन बागबाजार के बलराम मन्दिर जाया करता था। वहाँ पर मैं इस सेवाकार्य को प्रारम्भ करने के लिए स्वामीजी (विवेकानन्द) के प्राणों की आकुलता को देखता, उनकी कार्य योजना तथा आवेगपूर्ण उत्साहमयी वाणी को सुनता, तथापि मैंने सेवाकार्य में योगदान नहीं किया था। स्वामी सदानन्द ने ही मुझे अपने साथ कार्य करने को बुलाया और इस सेवा में लगकर मैं अपने को धन्य मानता हूँ।

''एक दिन मैंने देखा कि स्वामी सदानन्द ग्रे स्ट्रीट के मेहतरपाड़ा में जाकर कुछ लड़कों को बुला रहे है। मैं उस समय अपने मकान के बरामदे में बैठा था। उन्होंने मेरे पास आकर पूछा, 'यह क्या तुम्हारा मकान है ?' मैंने कहा, 'हाँ, महाराज।' वे मुझे कभी भैया तो कभी भाई कहकर सम्बोधित करते थे। उन्होंने कहा, 'चल मेरे साथ।' बाल्टी भर पानी में रोगाणुनाशक औषधियाँ घोलकर उन्होंने मुझे भगी बालकों की सहायता से मुहल्ले के प्रत्येक घर के भीतर के पाखाने तथा नालियॉ साफ कराने का आदेश दिया।

''स्वामी सदानन्द उस मुहल्ले का भार मुझे देकर भंगियों की एक टोली के साथ अन्यत्र कार्य करने चले गये। इस कार्य के दौरान मैंने पाया कि कुछ सज्जन तो आग्रहपूर्वक हमें घर के भीतर ले गये, परन्तु कई लोग व्यग तथा तिरस्कार करते हुए बोले, 'अरे तुम लोगों को दादागीरी दिखाने की जरूरत नहीं। लाओ दवाइयॉ हमें दे दो, तुम घर के भीतर नहीं जा सकते।' कोई कोई बोला, 'जाओ बेटा जाओ, घर जाकर पढ़ो-लिखो।' तुम्हें यहॉ बुजुर्गी दिखाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु हम भी नाछोड़-बन्दे थे, तर्क-वितर्क के बाद हमने अनेक मकानों में काम किया और बहुत से मकानो मे हमे प्रवेश नहीं भी मिला।

''यह सब करके लौटा तो लगभग दो बजे थे। देखा कि स्वामी सदानन्द हमारे बरामदे में बैठे हुए हैं। उनके सामने सब कुछ बयान किया। सुनकर वे बोले, 'इससे डरना मत। समाज की यही हालत है। हमारे तथाकथित शिक्षित लोग भी अपना भला-बुरा समझना सीख नहीं सके हैं। तुम अपना कार्य किये जाओ।'

''अगले दिन उन्होंने दर्जीपाड़ा जाने को कहा। वहाँ भी यही अवस्था थी। धनी लोग हमारी बातें हँसकर उडा देते। सुनकर सदानन्दजी बोले, 'कल बस्तियों को देखना होगा। चलो कल सुबह काठमा-बागान में जाकर कार्य करेंगे, मैं भी तुम लोगों के साथ रहूँगा। बड़े सबेरे जमादारों के जुटाने के बाद उन्होंने मुझे भी बुला लिया।

''काठमा-बागान की बस्ती – मस्जिदबाड़ी स्ट्रीट पर स्थित एक विशाल बस्ती है। बाहर मोदियों तथा खाने-पीने की दुकानें हैं। भीतर का दृश्य भयावह था । चारो ओर दुर्गन्ध फैला था और मजदूर-निवासियों की चरम निर्धनता के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। जिधर से तीव्र दुर्गन्ध उठ रही थी, स्वामी सदानन्द हमे उधर ही ले गये। उस बस्ती से लगी हुई एक छोटी सी खाली जगह थी, जहॉ कूड़ा-कचरा एकत्र होकर स्तूपाकार हो गया था। उसके निकट दुमजले तिमजले मकानों की पॉत भी थी। कूड़े की सड़न से ही दुर्गन्ध फैल रहा था।

''स्वामी सदानन्द दुःख एवं क्रोध व्यक्त करने लगे और उक्त अट्टालिका-वासियों का तिरस्कार करते हुए कहने लगे – 'देखो तो भद्र समाज का काम! इस प्रकार रोगों के बीज इन गरीबों की बस्ती में फेंककर ये लोग महामारी फैला रहे हैं। प्लेग, चेचक, मलेरिया – सभी बीमारियाँ इस प्रकार कूड़े के सड़ने से ही होती हैं।'

''उन्होने भंगियों से टोकरी-कुदाल लेकर कूड़े को बड़ी सड़क तक पहुँचा आने को कहा, परन्तु उन लोगों ने साफ इन्कार कर दिया। इस पर सदानन्दजी उन्हे सम्बोधित करते हुए बोले, 'ठीक है भैया, हमीं साफ करते हैं, तुम लोग बैठे बैठे देखते रहो।' उन्होंने मुझसे एक बडी टोकरी मँगवायी और स्वयं कुदाल लेकर उसे भरने के बाद सडक के किनारे फेंक आने को कहा। उनका आदेश पाकर मैंने अपने सिर एक चादर बाँधी और टोकरी को उठाकर कचरा सडक पर डाल आया। मेहतर लोग भौचक्के होकर देख रहे थे। दो-तीन बार इसी प्रकार कूड़ा ले जाने के बाद मैंने देखा कि वे लोग बैठकर आपस में न जाने क्या खुसर-पुसर कर रहे हैं। मेरे लौटने तक महाराज एक टोकरी और भर चुके थे।

''इसी प्रकार आठ-दस चक्कर लगाने के बाद मैंने देखा कि भंगियों का दल महाराज के पॉव पकडे रुँआसा होकर कह रहा है 'बाबाजी, हमें माफ कर दीजिए। लाइए, कुदाल हमे दीजिए, हम सब साफ कर देंगे।' महाराज

ने कहा, 'नहीं नहीं, हमीं साफ करेगे। तुम लोग बस बैठे बैठे देखो। मैंने जो मजदूरी देने का वादा किया है, वह हर रोज जैसे ही शाम को दे दूँगा।' परन्तु वे लोग स्वामी सदानन्द के चरणों में गिरकर बोले, 'नहीं नहीं बाबाजी, जब तुम कर रहे हो, तो फिर हम क्यों नहीं कर सकेंगे ?'

''आखिरकार उन लोगों ने महाराज के हाथों से कुदाल छीन ली और मेरे हाथों से भी टोकरी ले ली। बड़े विस्मय की बात थी ! वे लोग भी बडे उत्साह के साथ कार्य में जुट गये। स्वामी सदानन्द मुझे एक किनारे ले जाकर बोले, 'देखो भैया, भद्रजनों की अपेक्षा इनका हृदय कितना सजीव है। तुम कर रहे हो तो करते रहो – वे (भद्र) लोग परवाह नहीं करते। हो सकता है कोई कोई मुख से कह दे – वाह महाशय, अच्छा काम कर रहे हैं। बस यहीं तक। परन्तु इन लोगों के प्राण में टीस उठी है, इसीलिए हमारे हाथ से टोकरी-कुदाल छीनकर इन लोगों ने कार्य आरम्भ कर दिया।'

''मैंने कहा, 'यह पहाड़ जैसा कचरे का ढेर कितने दिनों में समाप्त होगा ?' वे बोले, 'इस बस्ती का काम पूरा होने में ८-१० दिन लगेंगे। हम लोग भी खड़े क्यों रहें ? चलो, जीवाणुनाशक औषधियों को बाल्टी में घोलकर छिडकाव करें।'

''बस्ती के लोग यह सब देखकर आश्चर्यचकित थे। वे एक एक कर अपने दुःख-दुर्दशा की बातें कहने लगे। स्वामी सदानन्द की मुखमुद्रा को देखकर लग रहा था कि वे उन लोगों की सवेदना से अभिभूत हैं। उस समय उन्होंने किसी किसी को चावल या पथ्य आदि के लिए सहायता भी दी।

''संध्या के समय लौटने के पूर्व, उन सभी भंगियों को दिन भर की मजदूरी देने के बाद, वे खाने की चीजें तथा मिठाइयाँ लाकर उनमे बॉटने लगे, स्नेहपूर्वक किसी किसी बालक की पीठ ठोंकने लगे, किसी को बख्शीश देने लगे।

''यह अपूर्व भाव देखकर मेरे मन में उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा का उदय हुआ। मैंने कहा, 'आपने तो कुछ खाया ही नहीं। कुछ खाने की व्यवस्था करता हूँ।' वे हॅसकर बोले, 'नहीं भैया, खूब ठण्डा पानी लाओ। तुम भी स्नान करके कुछ खाओ – दिन भर का उपवास हुआ है।' मैंने उनके लिए एक गिलास कच्चे नारियल का पानी ला दिया। उन्होने मुझसे कहा, 'स्वामीजी की बातों को कार्यरूप परिणत करने में ही उनके दर्शन करने तथा उपदेश सुनने की सार्थकता है'।''

उपरोक्त विवरण से हम कल्पना कर सकते हैं कि स्वामी सदानन्द तथा उनकी टोली ने भगिनी निवेदिता के नेतृत्व में किस प्रकार सेवाकार्य में आत्मनियोग किया था। मई (१८९९) की उद्बोधन पत्रिका में उनके कार्यों का एक संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ था, जिसके मुख्य अंश इस प्रकार हैं –

"३१ मार्च से हमारे मिशन का प्लेग-निवारण कार्य आरम्भ हुआ। मकान को साफ-सुथरा रखना ही प्लेग से बचने का प्रथम और प्रधान उपाय है। बस्ती में इसे करना एक तरह से असम्भव है। नगर के भीतर यदि किसी स्थान पर अनेक गरीब लोग झोपडियाँ बनाकर रहते हैं तो उस स्थान को 'बस्ती' कहते हैं। बस्ती के निवासी प्रायः निम्न श्रेणी के हुआ करते हैं। स्वच्छतापूर्वक रहना उन्हें ज्ञात नहीं और ज्ञात हो तो भी वे अर्थाभाव के कारण इसमें अक्षम हैं। भारत की राजधानी होने के बावजूद कलकत्ते में गरीबों की ऐसी अनेक बस्तियाँ हैं। प्लेग पहले इन बस्तियों पर ही आक्रमण करता है और क्रमशः बड़े मकानों में प्रवेश करता है।

"स्वामी सदानन्द ने ७ भंगियों के साथ सर्वप्रथम बागबाजार की बोसपाड़ा बस्ती से सफाई का कार्य आरम्भ किया। ...६ अप्रैल को भगिनी निवेदिता ने और भी ५ भंगियों की नियुक्ति की। इसके पूर्व ही निकिड़ीपाड़ा की बस्ती में कार्य आरम्भ हो चुका था, जो श्यामबाजार के निकट स्थित है। यह बस्ती काफी समय से इतनी अस्वास्थकर तथा गन्दी हो गयी थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। १५ अप्रैल तक हमारा निकिड़ीपाड़ा का कार्य लगभग समाप्ति पर था। ...सियालदह के निकट मोचीबागान में एक बहुत लम्बा ड्रेन बहुत समय से मैले से भरा हुआ था। कुछ सज्जनों के अनुरोध पर भगिनी निवेदिता ने १९ अप्रैल को उस ड्रेन की सफाई की सारी व्यवस्था कर दी। इसके लिए पूर्वोक्त भंगियों के अतिरिक्त और भी अनेक कुलियों की नियुक्ति की गई थी। ३० अप्रैल को सियालदह का कार्य पूरा हुआ। ...१ मई से पुनः वार्ड नं.१ में कार्य आरम्भ हुआ है।"

इतने बड़े कलकत्ता नगर की विशाल जनसख्या की तुलना में रामकृष्ण मिशन द्वारा परिचालित यह प्लेग-सेवा का कार्य आयतन की दृष्टि से अत्यन्त छोटा था, तथापि भारतवासियों के समक्ष अपनी समस्याओं का स्वय ही संगठित होकर सामना करने के लिए एक आदर्श स्थापित करने की दृष्टि इसका महत्व बहुत बड़ा था और आज भी बना हुआ है। (समाप्त)

# सन्त ज्ञानेश्वर का तत्त्वज्ञान

**मनोहरराव देव**
(१५६, लोकमान्य नगर, इन्दौर)

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने 'ज्ञानेश्वरी' नामक अपना प्रथम एवं सर्वप्रधान ग्रन्थ शक सवत् **१२१२** में रचा। **१६** वर्ष की आयु में उन्होंने अपने गुरु निवृत्तिनाथ को इसे सुनाया और बाबा सच्चिदानन्द ने इसे लेखनीबद्ध किया। वस्तुतः यह श्रीमद्भगवद्गीता पर एक टीका ग्रन्थ है। वैसे तो कई भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं, पर मराठी-भाषियों के लिए तो यह एक अमोल निधि है। वे लोग इसे तत्त्वज्ञान की श्रेष्ठतम कृति मानते हैं। नेवासे ग्राम के मोहिनीराज मन्दिर में इस ग्रन्थ का प्राकट्य हुआ था। जिस स्थल पर इसका सृजन हुआ था, वहाँ आज भी एक कीर्तिस्तम्भ विद्यमान है।

अद्वैतामृतवर्षिणी गीता पर आज महान आचार्यों एव विद्वानों द्वारा लिखित सैकड़ों भाष्य तथा टीकाएँ उपलब्ध हैं। परन्तु कहते हैं कि आदि शकराचार्य ने ही सर्वप्रथम महाभारत के अंश-विशेष को अलग कर उस पर एक स्वतत्र भाष्य लिखा और एक अलग ग्रन्थ के रूप में उसे प्रचारित किया। ज्ञानदेव ने शाकर-भाष्य को ही अपने ग्रन्थ का आधार माना है। उनकी यह उक्ति बडी प्रसिद्ध है – भाष्यकाराते वाट पुसतु – मैंने भाष्यकार (शकर) से मार्गदर्शन लिया है। परन्तु आचार्य का अनुसरण करते हुए भी, उन्होंने आचार्य के समग्र सिद्धान्तों का ग्रथन न करके, अपनी प्रज्ञा से स्वमत का प्रतिपादन भी बड़े प्रभावी एव अभिनव पद्धति से किया है। जैसे गौड़पादाचार्य ने अपनी माण्डुक्य-कारिका के द्वारा 'अजातवाद' नामक एक स्वतंत्र तत्त्व की स्थापना की है, वैसे ही ज्ञानदेव ने भी इस ग्रन्थ के द्वारा 'चिद्विलासवाद' के रूप में अपनी स्वाधीन विचारधारा प्रस्तुत की है और एक तरह से यह भगवत्पाद आचार्य के 'मायावाद' का अप्रत्यक्ष खण्डन है।

सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा प्रतिपादित 'चिद्विलास' का तत्त्विक स्वरूप इस प्रकार है – "ज्यों ज्यों आत्मबोध का उदय होता है, त्यों त्यों नामरूपात्मक जगत् का लोप होता जाता है। आत्मस्वरूप वस्तुतः स्वयंसिद्ध एव धर्मरहित है, अतः नामरूपात्मक भासमान जगत् अपने मूल अधिष्ठान परब्रह्म से अलग न होकर तद्रूप ही है।" इसके उदाहरण के रूप में उन्होंने सागर तथा उसके कल्लोल का दृष्टान्त दिया। जैसे सागर तथा उसकी उर्मियॉ भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक हैं, जैसे स्वर्ण तथा उससे निर्मित अलंकार मूलतः एक ही हैं, वैसे ही जगत् भी परमात्मा का ही चिद्रूप विकास है।

ज्ञानेश्वर महाराज एक नाथपन्थी योगी थे। उनकी गुरुपरम्परा मत्स्येन्द्रनाथ –

गोरखनाथ – गहनीनाथ – निवृत्तिनाथ के रूप में अवतरित हुई थी, तथापि उन्होंने एक परम सन्त के रूप में सामान्य जनों का उद्धार करने हेतु 'भक्तिमार्ग' को ही प्रधान माना है। उनकी रचनाओं का मूल उद्देश्य था – कलिपीड़ित जीवों का उद्धार, सामान्य जन की आध्यात्मिक क्षुधा का सन्तर्पण, लोगों को सद्धर्म-आचरण में प्रवृत्त करना, सत्सग तथा ईशनिष्ठा का सवर्धन; और उनका दर्शन भी इसी उद्देश्य से अनुप्रेरित है।

ज्ञानदेव के ग्रन्थों में 'ज्ञानेश्वरी' के अतिरिक्त 'अमृतानुभव' तथा 'चागदेवपासष्टी' नामक सुविख्यात रचनाएँ काव्य-ग्रन्थ के रूप में निबद्ध हैं। प्रख्यात योगी चागदेव द्वारा दिये हुए उनके उपदेश **६५** दोहों में रचित हैं, इसीलिए इन्हें पासष्टी कहते हैं। उनका 'अमृतानुभव' ग्रन्थ परमोच्च साधकों के लिए मानो एक दीपस्तम्भ है और सामान्य वाचकों के लिए अगम्य है। इनके साथ ही उनकी 'हरिपाठाचे अभग' तथा अन्य स्फुट रचनाएँ 'वारकरी सम्प्रदाय' का मूल आधार मानी जाती हैं।

उनकी विचारधारा मानो एक सन्त का कल्याणमय जीवन-दर्शन है। योगारूढ़ सिद्धपुरुष होकर भी वे सामान्य जनसमुदाय से इतने घुल-मिल गये थे कि उन्हें तत्त्वज्ञानी कहे या सन्त ऐसा सम्भ्रम उत्पन्न होता है। उनके द्वारा प्रवर्तित 'वारकरी सम्प्रदाय' आज भी पण्ढरपुर के श्री विट्ठल का महान उपासक और भागवत धर्म के भक्तिमार्ग का एक अग्रणी सम्प्रदाय माना जाता है। प्रसिद्ध उक्ति है – ज्ञानदेवे रचिला पाया तुका झालासे कळस – अर्थात – ज्ञानदेव ने इसकी नींव रखी और तुकाराम इसके शिखर के कलश हुए।

### प्रमुख सिद्धान्त

**(१) भक्तिमार्ग** – पण्ढरी के विट्ठल इनके उपास्य देवता थे। विट्ठल को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा है – बाप रखमादेवी वरु अर्थात रुक्मिणीदेवी के वर मेरे पिता हैं। श्रीकृष्ण के विविध रूपों में श्री विट्ठल भी एक माना गया है। ऐसी किवदन्ति है कि दीन-दुखी तथा अज्ञ जनों के उद्धारार्थ भगवान पण्ढरपुर में आविर्भूत हुए और अपने परम भक्त पुण्डलीक के आग्रह पर वहीं ईंट के दो टुकड़ो पर खड़े रहे। इस प्रकार उनका नाम विट्ठल हुआ, क्योकि मराठी भाषा में ईंट को वीट कहते हैं। वारकरी सम्प्रदाय की प्रमुख मान्यता है – रामकृष्ण मत्र जनासी उद्धार – अर्थात रामकृष्ण-हरि मत्र से ही सामान्य जनों का उद्धार होगा।

**(२) आचार्योपासना** – गुरुभक्ति को ज्ञानदेव ने विशेष रूप से गौरवान्वित किया है। ज्ञानेश्वरी मे गुरुभक्ति का विविध स्थलो पर निदर्शन है। वे कहते हैं –

**मज हृदयी सद्गुरु। जेणे तरिलो हा संसार पुरु।**

**म्हणवुनी विशेषे आदरु। विवेकावरी॥**

– जिनकी कृपा से मैंने यह दुस्तर संसार-सागर को पार किया, उन सद्गुरु के विवेकपूर्ण उपदेश के प्रति मेरा विशेष आदरभाव है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में उन्होंने मंगलाचरण के रूप में अपनी गुरुभक्ति प्रदर्शित की है।

(३) **वेद की अपूर्णता और गीता गौरव** – भगवद्गीता के बारे में उनकी अति उच्च धारणा थी। ज्ञानेश्वरी में एक स्थान पर उन्होंने गीता को माहेश्वरी दुर्गा का अवतार कहा है, जो अज्ञानी जीवों का उद्धार करने को धरती पर प्रकट हुई थीं। वे लिखते है –

**कीं गीता हे सप्तशती। मंत्रप्रतिपाद्य भगवती।**
**मोहमहिषा मुक्ती। आनंदली असे॥**

– सात सौ श्लोकोंवाली भगवद्गीता, मोहरूपी महिषासुर का दलन करने के लिए सप्तशती मंत्र द्वारा प्रतिपाद्य भगवती के रूप में प्रकट हुईं और मुक्ति का सुलभ उपाय देकर सन्तुष्ट हो गईं।

सनातन धर्म के मूल आधार वेद को भी वे इस दृष्टि से पर्याप्त नहीं मानते और उसे कृपण कहते हैं –

**वेदसंपन्न ठायी ठायी। परी कृपण ऐसा आन नाही।**
**जे कानी लागला तिहि। वर्णांत्र्याची॥**

– वेद बड़ा ही सम्पन्न है, परन्तु उसके समान कृपण दूसरा नहीं। वह केवल ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य – इन तीन वर्णों के कान में ही रह गया। यहाँ ज्ञानदेव ने इस तथ्य पर मार्मिक व्यंग किया है कि स्त्रियों तथा निम्न वर्णों को वेद मे अधिकार नहीं है।

(४) **यज्ञकर्म तथा स्वधर्मनिष्ठा** – ईशावास्य उपनिषद के 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' – मन्त्र का तात्पर्य समझाते हुए वे कहते हैं –

**हे संपत्तिजात आघवे। हवन द्रव्य मानावे।**
**मग स्वधर्मयज्ञे अर्पावें। आदिपुरुषी।।**

– संसार सारी सम्पत्ति को हवन-सामग्री मानकर स्वधर्म रूपी यज्ञकुण्ड में आदिपुरुष परमेश्वर के निमित्त समर्पित करना चाहिए।

(५) **ईश्वर-दर्शन** – भगवान श्रीरामकृष्ण ईश्वर के विषय में कहते थे कि वे सभी जीवों के अन्तर में विराजमान हैं, तथापि कोई उन्हें देखने का प्रयास नहीं करता। इसी प्रकार ज्ञानेश्वर महाराज भी ईश्वर की समीपता एव जीव की मोहग्रस्तता के विषय में एक सुन्दर दृष्टान्त देते हैं –

**पाहे पां दूध पवित्र आणि गोड़।**
**परी त्वचे चिया पदरा आड़॥**
**वरी ते अव्हेरुनी गोचिड़ अशुद्धची सेवी॥**

– गाय का पवित्र एव मधुर दूध उसके थन में होता है। उसी थन पर गोचिड़ नामक कीड़ा निवास करता है, परन्तु वह अमृत-भण्डार के पास रहकर भी अशुद्ध रक्त का सेवन करके ही जीवित रहता है।

(६) **निर्गुण-सगुण** – ज्ञानदेव निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते समय भी सगुण ब्रह्म की विशेष रूप से चर्चा करते हैं। दोनों की एकरूपता दर्शाने के लिए वे तरल तथा जमे हुए घी का दृष्टान्त देते हैं। उनकी अखण्ड धारणा है कि भक्त और भगवान की एकात्मता ही ब्रह्मबोध का रहस्य है। वे कहते हैं –

**हृदया हृदयी एक झाले।**
**ये हृदयीचे ते हृदयी घातले॥**

भगवद्गीता मे श्रीकृष्ण और अर्जुन के प्रेमालिंगन का वर्णन करते हुए वे बताते हैं कि श्रीकृष्ण के हृदय-स्पर्श मात्र से ही अर्जुन को ब्रह्मभाव प्राप्त हुआ और उनके मुख से निकल पडा – करिष्ये वचनं तव – मैं तुम्हारे कथनानुसार करूँगा। सगुण के माध्यम से निर्गुण में पहुँचने का यह प्रयत्न ज्ञानेश्वरी की प्रमुख विशेषता है।

उनका अमृतानुभव तत्त्वज्ञान का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें ज्ञानदेव अपनी विनयपूर्ण वाणी मे अपनी अनुभूति का वर्णन करते हुए लिखते हैं – "ज्ञान और अज्ञान दोनो से रहित, जहाँ अविद्याकृत बन्धन तथा विद्याकृत बन्धन दोनों की कल्पना तक नहीं की जा सकती, वह शुद्ध आत्मस्वरूप मेरे सद्गुरु ने मुझे प्रदान किया है। उस अनिर्वचनीय स्वरूप का वर्णन शब्दों में करना केवल उपचार मात्र है।"

इन श्रेष्ठ सन्त, तत्त्ववेत्ता, योगी तथा ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ने अपना जागतिक कार्य समाप्त करने के पश्चात, अपनी आयु के वाईसवें वर्ष में ही सजीवन-समाधि ग्रहण की। इस महासमाधि के अवसर पर लिखा गया सन्त नामदेव का पद आज भी असख्य नर-नारियो की आँखों में अविरल अश्रु प्रवाहित करता है।

इस प्रकार ज्ञानदेव महाराष्ट्रीय सन्तों के मुकुटमणि, विट्ठल-भक्तिधारा तथा वारकरी सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्तक हुए। अद्वैतमत का प्रतिपादन करते हुए भी वे एक विशिष्ट दर्शन के उद्गाता थे और वेदों मे अधिकार से वंचित अगणित सामान्य जन को उन्होंने उन्हीं की भाषा में भागवत-धर्म का रहस्य समझाया।

# जन-जागृति के गायक : कबीर

*स्वामी आत्मानन्द*

भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में सन्त कबीर एक युगान्तरकारी कवि, क्रान्तदर्शी सुधारक और गहनगर्भी आत्मानुभूति के विह्वल गायक के रूप मे प्रतिष्ठित हैं। वे एक ऐसे महाकवि थे, जिन्होने साहित्य की प्राणदायिनी धारा को राजप्रासादों के प्राचीरों से मुक्तकर जनमानस की विशाल भूमि पर प्रवाहित किया और उसे अनुरजन के क्षुद्र उद्देश्य से हटाकर जनजागरण का प्रभावी माध्यम बना दिया। वे एक ऐसे क्रान्तद्रष्टा सुधारक थे, जिनका अवतरण शताब्दियों के सुदीर्घ अन्तराल के उपरान्त किमाकार अन्धविश्वासों, अस्वास्थ्यकर रूढियों और स्तूपाकार अज्ञान-राशि के अन्धकार के विनाश के लिए प्रखर-तेजपुज के रूप में हुआ करता है। सन्त कबीर एक महान लोकनायक भी थे तथा उन्होंने अपने जीवन और कृतित्व के माध्यम से अपने युग की धार्मिक और सामाजिक सक्रान्ति का समाधान प्रस्तुत किया था। यह संक्रान्ति भारतीय मेधा पर इस्लाम के आक्रमण के फलस्वरूप निर्मित हुई थी। इस सर्वग्रासी आघात से भारतीय संस्कृति की सामासिकता एक झटके में ही विषण्ण हो गयी थी तथा भारतीय समाज अपने-आपको बचाने के लिए और भी अधिक संकुचित हो गया था। भारतीय समाज का यह सकोच बढती हुई आचारप्रवणता, वृद्धिमान आडम्बर और जातिव्यवस्था की कट्टरता के रूप मे दिखायी देता है। उस युग में धर्म के क्षेत्र मे भी अराजकता व्याप्त थी। एक ओर तो उत्तर भारत के नाथपन्थी योगियों और सिद्धों ने धर्म को हठयोग की क्रियाओं मे समेटकर मनुष्य की मुक्ति को अतिशय दुर्लभ बना दिया था, तो दूसरी ओर दक्षिण के भक्तिमार्गियों ने यह आश्वासन दिया था कि जीव के कोटि-कोटि पाप ईश्वर का नाम लेने मात्र से, या केवल गंगा में डुबकी लगा लेने से ही नष्ट हो जाते है। इस प्रकार योगियों ने जहाँ जनता को असहाय और सशयालु बनाया था, वहाँ भक्तो ने उसमें अतिशय आशावादिता और अकर्मण्यता का सचार भी किया था। ये दोनों पथ अतिवादी थे तथा एक ऐसे आध्यात्मिक मनीषी की प्रतीक्षा की जा रही थी, जो इन दोनों अतिवादी पद्धतियों में समन्वय स्थापित करे और धर्म को जाति, वश, कुल और वर्ग के घेरे से निकालकर सर्वजनसुलभ बना दे। सन्त कबीर एक ऐसे ही मनीषी थे, जिन्होने भारतीय धर्म-साधना को शाब्दिक कुहलिका से मुक्त किया और उसकी नीरस ज्ञानगर्भिता को भक्तिरसामृत प्रवाहित कर मधुर और सरस बना दिया।

यद्यपि सन्त कबीर ने धार्मिक वितण्डावादो और सामाजिक आडम्बरो पर

कठोर प्रहार किये हैं किन्तु सर्वोपरि वे एक विनत, विह्वल भक्त हैं। इसीलिए तो उनका हृदय उन सद्गुरु की अहैतुकी कृपा का स्मरण कर गद्गद् हो उठता है जिन्होंने सबद की चोट से उनका सारा शरीर-बोध मिटा दिया है और भगवदानुराग के रंग से उनका बाहर-भीतर रग दिया है –

**सतगुरु हो महराज, मो पै साई रंग डारा ।**
**सबद की चोट लगी मेरे मन में, बेध गया तन सारा।।**

अक्षर-ब्रह्म के इस अप्रतिम उपासक को जब सबद की चोट लगती है, तब उसके मन में एक अपूर्व विरह का संचरण होता है –

**औषध मूल कछू नहीं लागै, का करै बैद बैचारा।**
**सुर नर मुनि जन पीर औलिया, कोई न पावे पारा।**
**साहब कबीर सर्व रंग रंगिया, सब रंग से रंग न्यारा।।**

इस ईश्वरीय विरह के वर्णन में सारे काव्यशास्त्रीय अलंकार पीछे छूट जाते हैं, योगशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली पगु हो जाती है और कबीर की विरह-विधुरा आत्मा पुकार उठती है –

**बिरहा बुरहा जिनि कहो, बिरहा है सुलतान।**
**जिस घटि बिरह न संचरे, सो घट सदा मसान।।**
**कबीर हसणा दूरि करि, करि रोवण सो चित।**
**बिन रोया क्यूं पाइये, प्रेम पियारा मित।।**
**यह तन जालौं मसि करौं, ज्यूं धूंधा जाइ सरग्गि।**
**मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि।।**

कबीर ने अपनी देह को दिया बना दिया है, उसका जीव ही दिये की बाती है और वह अपने रक्त को निरन्तर तेल के समान इस दीपक में इसलिए जला रहा है कि वह अपने प्रियतम का मुख देख सके। और जब उसे आत्मतत्व का बोध होता है तब –

**समन्दर लागी आगि, नदिया जल कोइला भई।**
**देखि कबीरा जागि, मछी साखा चढ़ि गई।।**

भवसागर मे आग लग जाती है, इद्रियों की सरिताएँ सूखकर कोयला बन जाती हैं और मूलाधार चक्र में अधिष्ठित कुडंलिनी-शक्ति रूपी मछली सुषूम्ना वृक्ष के शिखर पर अवस्थित निराकार शिव के समीप चढ़ जाती है। तब कबीर हद छोडकर बेहद मे पहुँच जाते हैं, शून्य में स्नान करते हैं तथा जिस महल को मुनिगण प्राप्त नही कर सकते, वहाँ वे विश्राम करते हैं।

शब्द-ब्रह्म की साधना में पूर्णकाम होने के उपरान्त जब आत्मद्रष्टा कबीर का चित्त सामान्य भावमूमिका पर अवस्थित होता है, तब वे धर्म के क्षेत्र मे पनपते हुए अन्धविश्वासों को देखकर विक्षुब्ध हो उठते है और पूरी प्रखरता के साथ इन पर कुठाराधात करते हैं। उनके कुठाराघात के तीन प्रधान लक्ष्य हैं – अवधूत, पण्डित और मुल्ला, तथा कर्मकाण्ड। अवधूत या नाथपंथी योगियों को चमत्कारवाद के फेर से निकालते हुए कबीर आत्मशुद्धि का उपदेश देते है और अन्तर्मुखी साधना पर बल देते हुए कहते हैं – अरे अवधूत, तू गगन-मण्डल में अपना घर बना –

**अवधू, गगन मँडल घर कीजै।**
**अमृत झरै सदा सुख उपजै ब्रह्मनालि रस पीजै।।**
**मूल बांधि सर गगन समाना, सुषमन यों तन लागी।**
**काम क्रोध दोउ भया पलीता, तहा जोगणी जागी।।**
**मनवा जाइ दरीबे बैठा, मगन भया रसि लागा।**
**कह कबीर जिय संसा नाही, सबद अनाहद बागा।।**

पण्डित और मौलवी कबीर के आक्रमण के दूसरे प्रधान लक्ष्य हैं। इन्हीं के बाह्याचारों के विष से धर्म की शाश्वत चेतना मुमूर्षु हो जाती है। इसलिए कबीर इन्हें ललकारते हुए कहते हैं –

**ना जाने तेरा साहब कैसा है।**
**मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या तेरा साहब बहिरा है?**
**चिउटी के पग नेवर बाजे, सो भी साहब सुनता है।।**
**पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता है।**
**अन्तर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।।**

कर्मकाण्ड और बाह्याचारों पर कबीर की तीक्ष्ण दृष्टि पड़ी थी। अगर माला पहनने से ईश्वर मिलते हों तो कबीर रहट को गले में बाँधने के लिए तैयार हैं। अगर पत्थर पूजने से हरि प्राप्त हों तो कबीर पहाड़ को पूजने के लिए प्रस्तुत हैं। गंगास्नान के लिए जानेवाली स्त्रियों पर भी कबीर की तीखी नजर थी और उन्होने इन्हें कुलबोरनी कहा था –

**चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।**
**गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन, नौ मन मैल लिहिन चढाय।**
**पांच पचीस के धक्का खाइन, घरहु की पूंजी आई गंवाय।**

ईश्वरीय अनुभूति से युक्त होने पर कबीर यह जान गये थे कि धर्म के क्षेत्र में पनपने वाले समस्त बाह्याचार, क्रिया-अनुष्ठान, कर्मकाण्ड आदि व्यर्थ हैं। इसीलिए

वे इन समस्त आडम्बरों का विरोध करते है। धर्म के इन बाह्य आवरणों को नकारने के साथ ही कबीर यह भी घोषित कर देते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके कोई नहीं हैं। एकमात्र निरंजन अल्लाह ही इनके अपने है –

**एक निरंजन अल्लह मेरा, हिन्दू तुरुक दुहूं नहीं मेरा।**
**राखूं व्रत ना महरम जाना, तिस ही सुमिरु जो रहे निदाना।**
**पूजा न करूं निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमसकारूं।**

कबीर जानते थे कि धर्म के ये बाह्यावरण उसे अमानवीय बना देते हैं। इसलिए जहाँ वे पीर, पैगम्बर, काजी, मुल्ला, रोजा-नमाज को अनुचित कहते हैं, वहाँ देव-द्विज, एकादशी-दीवाली को भी अर्थहीन बताते हैं। कबीर पूछते हैं कि अगर हिन्दुओं के देवता मन्दिर में और मुसलमानों के खुदा मसजिद में रहते है, तो जहॉ न मन्दिर है और न मसजिद, वहाँ किसकी ठकुराई चलती है –

**तुरुक मसीति देहुरे हिन्दू, दुहूंठा राम खुदाई।**
**जहॉ मसीति देहूरा नाहीं, तहं काकी ठकुराई।।**

धर्म को सम्प्रदायवाद के तंग घेरे से निकालकर सन्त कबीर ने शाश्वत मानव-धर्म की आधारशिला रखी थी। उन्होंने वेद और कुरान से परे धर्म का आख्यान करते हुए कहा था कि जहाँ ब्रह्माकाश गरजता रहता है, जहाँ अमृत की वर्षा होती रहती है, जहाँ वेद और कुरान की गति नहीं है, वहीं कोई शूरमा रमण करता है –

**गगन गरजे तहां सदा पावस झरै, होत झनकार नित बजत तूरा।**
**वेद-कतेब की गम्म नाही, तहां कहै कबीर कोई रमै सूरा।।**

कबीर का यह धर्म प्रेम का धर्म है। यहाँ जाति-पाँति के अटूट बन्धन नहीं हैं। यह मानव-मात्र के लिए चिर अनावृत है। यह धर्म बाह्याचारों को स्वीकार नहीं करता। इसका जन्म रूढ़ियों और कुसंस्कारों के विनाश के द्वारा होता है। कबीर इस अपूर्व प्रेमधर्म का प्रतिपादन इसलिए करते है कि उन्होंने स्वय इसका अनुभव किया है –

**राम रसाइण प्रेम रस, पीबत अधिक रसाल।**
**कबीर पीवण दुलभ है, मागै सीस कलाल।।**

इस असार ससार मे प्रेम ही एकमात्र सार है। बिना प्रेम के भक्ति का कोई मूल्य नही होता। कबीर कहते है –

**बिना प्रेम जो भक्ति है, सो निज दम्भ विचार।**

किन्तु यह प्रेम सहज नहीं है। इसके लिए तो अहंकार का समूल नाश आवश्यक है –

**कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि।**
**सीस उतारे भुई धरे, तब पैठे घर माहि।।**

कबीर कोरे बुद्धिवादी शास्त्रदम्भी पण्डितों को देखकर कह उठते हैं –

**पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि-लिखि भया जु ईट।**
**कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एको छींट।।**
**पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।**
**ढाई अक्खर प्रेम का पढ़े सो पण्डित होय।।**

सन्त कबीर इस ढाई अक्षर के मर्म को जानते हैं तथा इसी को धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने बाह्याचारों का खण्डन और जातिगत, कुलगत एवं संप्रदायगत विशेषताओं का निराकरण किया था। पर इसमें उनका तनिक भी अहकार नहीं था, क्योंकि उन्होंने तो अपने-आपको मिटाकर ही प्रियतम के दर्शन प्राप्त किये थे –

**कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।**
**गले राम की जेवडी, जित खैचे तित जाउं।।**
**तू तू करे तो बाहुडौं, दुरि दुरि करै तो जाउं।**
**ज्यू हरि राखै त्यू रहौ, जो देवै सो खाउं।।**

आत्मसमर्पण के इस अतल तल का स्पर्श करते हुए भी कबीरदास जनजीवन के किसी भी पक्ष के अनाचार को सहन नहीं कर सकते थे। बाह्याडम्बर और पाखण्ड की बहुलता के युग में उन्होंने सर्वसाधारण के हृदय मे सत्य और सदाचार का जो भाव जाग्रत किया था और नित्य एव सत्य ईश्वर के अस्तित्व को पुष्ट करते हुए उसे जीवन में अनुभव करने का जो उपदेश दिया था, वह शताब्दियो तक लोकमानस को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

# प्रयाग में स्वामी विवेकानन्द

*गोविन्दचन्द्र बसु*

(धन्य थे वे लोग, जो स्वामीजी के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए थे। वर्तमान प्रबन्ध के लेखक प्रयाग में स्वामीजी के मेजबान थे और उन्होंने उस काल की पुरानी स्मृतियों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। 'स्मृतिर आलोय स्वामीजी' नामक बँगला ग्रन्थ से हम इसका हिन्दी अनु वाद प्रस्तु त कर रहे हैं–।सं.)

१८८० ई. के जाड़े का मौसम। प्रातःकाल सम्भवतः नौ-दस बजे थे। मैं किसी कार्यवश मछुआबाजार स्ट्रीट के सुप्रसिद्ध श्री ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय के घर जाने को तैयार हो रहा था। ईशान बाबू के पुत्र सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय मेरे सहपाठी थे। जाकर देखा तो सतीश पखावज बजा रहे थे। दो-तीन नौ-दस वर्ष के बालक हाथ से चौताल का लय रख रहे थे और एक तेजपुंज युवक ध्रुपद गा रहे थे। मैं उनका गाना और तेजस्वी कलेवर देखकर विशेष आकृष्ट एवं मुग्ध हुआ। परन्तु कोई परिचय न होने के कारण मैं उनसे कुछ पूछ नहीं सका। लौट आने के बाद अगले दिन मैंने अपने मित्र सतीश से पूछा कि वह युवक कौन था और उनके बारे में विविध प्रश्न करने लगा। पता चला कि युवक का नाम नरेन्द्रनाथ है, कलकत्ते के ही सिमुलिया में उनका घर है और वे परमहंसदेव के अतीव प्रियपात्र हैं। यह हुआ मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार का विवरण।

१८८८ ई. में योगानन्द स्वामी परिव्राजक के रूप में भ्रमण करते प्रयाग आए और सौभाग्यवश मेरे घर में ही आतिथ्य स्वीकार किया। कुछ दिनों बाद उन्हें चेचक का रोग हो गया। बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि योगेन परमहंसदेव के संन्यासी-शिष्य हैं और उनके साथ विविध प्रकार से शास्त्रचर्चा, धर्मप्रसंग तथा परमहंसदेव के विषय में वार्तालाप करके मैं अत्यन्त मुग्ध हुआ। उनके चेचक निकल आने पर मैं बड़ा चिन्तित हुआ और योगेन की आज्ञानुसार मैंने वराहनगर के परामाणिक घाट पर सद्यः स्थापित मठ में समाचार भेज दिया। तार पाकर स्वामी विवेकानन्द, शिवानन्द, अभेदानन्द, निरंजनानन्द, योगेन-माँ और गोपाल-माँ शीघ्र ही कलकत्ता से (ग्रैण्डट्रंक रोड, चक स्थित) मेरे घर

आ पहुँचे ।

बातचीत के दौरान एक दिन स्वामी अभेदानन्द ने कहा, "डॉक्टर, ठाकुर ने कहा था कि नरेन को भोजन कराने से हजार ब्राह्मणों को खिलाने का फल होता है ।"

नरेन – क्यों रे, दुकानदारी लगा रहा है, धन्धा जमा रहा है, तो क्या करेगा, बेटा ? कुछ पूँजी तो चाहिए न ?...

एक दिन अपराह्न में सभी अर्थात् स्वामीगण तथा मैं एकत्र होकर भजन और गीत गा रहे थे । भाव जम गया । भजन आदि थोड़ी देर चलता रहा । इससे मेरे मन में विशेष भक्ति एवं आनन्द की उद्दीपना हुई और भाव-संवरण में अक्षम हो जाने के कारण मेरे नेत्रों से आँसू बहने लगे । स्वामीजी आदि गाने में विशेष रूप से आवेशित हो गए थे । परन्तु मेरे नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होते देख उन्होंने अपने भाव का संवरण कर उपहास एवं व्यंग के स्वर में मुझसे कहा, "तेरे बड़े फीके नेत्र हैं ।"

इसी समय एक दिन सन्ध्या के समय हम अनेक लोग बैठे विविध प्रकार की चर्चा कर रहे थे । गिरीश (गिरीशचन्द्र वसु, जो उन दिनों इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करते थे और बाद में न्यायाधीश हुए थे ) आकर थियॉसाफी के बारे में तरह तरह की व्याख्या तथा चर्चा करने लगा । स्वामीजी ने गिरीश की बातें अधिक श्रद्धा तथा ध्यानपूर्वक नहीं सुनी, पर ज्ञानमार्ग के विविध पक्ष तथा उच्च अवस्था के विषय में बोले । गिरीश सहसा चीत्कार करते हुए बोल उठा, "स्वामीजी, यह आपने क्या किया ? मेरे दस वर्ष का परिश्रम मिट्टी कर डाला ?" स्वामीजी ने कहा, "तुम्हारा मिट्टी हुआ या नहीं हुआ, इससे मुझको क्या ?"

एक दिन गिरीश बोला, "स्वामीजी, चलिए सन्दूक साह नामक एक साधु को देखने चलें ।" हम सभी शाम को वहाँ जा पहुँचे । सन्दूक साह त्रिवेणी के निकट स्थित बाँध के ऊपर रहते थे । वे अपनी सारी चीजें काठ के एक बड़े सन्दूक में भरकर रखते थे और उसी पर आसन बिछाकर बैठे रहते थे । स्वामीजी ने कहा, "यह साधु रामायत वैष्णव वैरागी है । इसकी दुकानदारी का माल इसी सन्दूक के भीतर रहता है ।"

अन्य एक दिन माधवदास बाबा नामक एक बंगाली वैरागी साधु, जो कीटगंज के एक मकान के एक घेरे में चालीस वर्ष तक रहे, स्वामी विवेकानन्द तथा उनके अन्य गुरुभाइयों को देख स्तम्भित रह गए। और वे स्वामी विवेकानन्द की तीक्ष्ण दृष्टि के सम्मुखीन नहीं हो सके। मन्त्र-औषधि द्वारा वशीभूत सर्प के समान वे मस्तक झुकाए रहे, कुछ बोल नहीं सके। वैरागी महाशय ने अत्यन्त हर्षित होकर मुझसे कहा, "गोविन्द, तुम क्या ही अद्‌भुत सत्संग कर रहे हो!"

एक दिन स्वामीजी, उनके गुरुभ्रातागण और मैं झूँसी-दर्शन करते हुए दयाराम के आश्रम में पहुँचे। पूरा दिन इतने आनन्दपूर्वक बीता था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ का सघन भाव, सत्प्रसंग, हृदयस्पर्शी प्रेम और बीच बीच में हास्योद्दीपक व्यंग-विनोद आज भी मेरे हृदय में जाग्रत है और अभी कुछ काल पूर्व ही घटित हुआ सा लगता है। वह दृश्य अब भी मेरे नेत्रों के सामने उपस्थित है। हम लोग सायंकाल लौटे। स्वामीजी केवल एक कौपीन तथा गैरिक वस्त्र पहनकर एक मोटा कम्बल ओढ़े नंगे-पाँव चल रहे थे। नग्नपद चलने में अनभ्यस्तता और ऊबड़-खाबड़ एवं बालुकामय पथ होने के कारण स्वामीजी के पाँव की त्वचा मानो फटकर खून निकलने की हालत में पहुँच गई थी, जिसे देखकर मेरे मन में बड़ी पीड़ा तथा आत्मग्लानि होने लगी। क्योंकि मेरे पाँव में अच्छा जूता था और वे सभी नंगे पाँव थे। मैं दुखी होकर जूते खोलकर हाथ में लेकर चलने लगा। स्वामीजी यह देख मुझसे स्नेहपूर्वक बोले, "जूते क्यों निकाल दिये?" मैंने किंचित् लज्जित एवं अन्यमनस्क होकर कहा, "स्वामीजी, आप सभी नंगे-पाँव इतना कष्ट उठाते हुए चल रहे हैं और मैं जूते पहनकर चलूँ, यह उचित नहीं। आप लोगों को क्लान्त एवं नंगे-पाँव चलते देखकर मेरे हृदय में बड़ी पीड़ा हो रही है, अतः मैं जूते पहने नहीं रह सका।"

एक दिन स्वामीजी तथा उनके गुरुभाईगण रात का भोजन मेरे घर कर रहे थे। उन दिनों मेरे ज्येष्ठ भ्राता ठण्ठीमल की कोठी पड़रानी मण्डी में थी। उस समय अमूल्य नामक एक साधु (जो बाद में इलाहाबाद के लोगों में 'गुरुजी अमूल्य' के नाम से सुपरिचित हुए) ने सबके साथ बैठकर भोजन करते हुए स्वामीजी को दिखाकर एक सूखी लाल मिर्च खाई

स्वामीजी ने दो खाई, अमूल्य ने तीन खाई, स्वामीजी ने चार खाई; इसी प्रकार मिर्चों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । अन्त में अमूल्य हार गये । सभी हँसने लगे । ऐसे सामान्य विषय में भी स्वामीजी के चरित्र का माधुर्य एवं हृदयस्पर्शी भाव परिलक्षित हुआ था । साधारण-सा मिर्च खाना भी एक विशेष कार्य और महत्वपूर्ण बात हो सकती है – यह तथ्य अब भी मेरे स्मृतिपटल पर अंकित है । साधारण से कार्यों में भी उनका गम्भीर्य एवं माधुर्य इस प्रकार व्यक्त होता था, मानो वे वेदान्त के उच्च तत्वों की व्याख्या कर रहे हों । भोजन के बाद स्वामीजी ने मुझसे एकान्त में कहा, "अमूल्य यदि जाना चाहे, तो तुम इसे वराहनगर मठ भेज देना ।"

एक दिन स्वामीजी ने मुझसे कहा, "आज हम लोग प्रस्थान करेंगे ।" मैं अत्यन्त कातर होकर अनुनय-विनय करने लगा कि वे कम से कम एक दिन और ठहर जायँ; क्योंकि उनसे बिछुड़ने की कल्पना मात्र से मेरे प्राण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे थे । स्वामीजी ने मुझसे गम्भीरतापूर्वक कहा, "इससे सत्य की विच्युति होगी । मैं आज ही जाऊँगा ।" और उन लोगों ने उसी दिन मेरे घर से प्रस्थान किया ।

मैं शाकाहारी था; मांस मछली मैंने कभी खाई न थी और दूसरों के लिए भी मैं उसे अनावश्यक तथा धर्मपथ का बाधक समझता था । अतः एक दिन बातचीत के दौरान मैंने यह प्रश्न उठाया कि मांस-मछली खाना मनुष्य के लिए उचित है या अनुचित । स्वामीजी ने हास्यपूर्ण मुखभंगिमा के साथ स्नेहपूर्ण गम्भीर स्वर में कहा, " देखो गोविन्द, सिंह-व्याघ्र मांसाहारी हैं और चटक ( गौरैय्या आदि पक्षी चावल के कण तथा कंकड़ खाकर जीवन धारण करते हैं; परन्तु सिंह-व्याघ्र आदि में साल में एक बार ही सन्तान उत्पन्न करने की प्रवृत्ति हुआ करती है और चटक आदि निरामिष आहारी पक्षी निरन्तर सन्तान उत्पन्न करने को व्यग्र रहते हैं ।[१] मांसाहार धर्मपथ में बिल्कुल भी बाधक नहीं है ।

---

१. **सिंहो बली द्विरदशूकर-मांसभोजी संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम् ।**
**पारावतः खरशिलाकणमात्र भोजी कामी भवत्यनुदिनं वद कोऽत्र हेतुः ।।**
– बलवान सिंह यद्यपि हाथी व सूअर का मांस खाता है, तथापि वह साल में एक बार ही सम्भोग करता है; जबकि पक्षी (एक तरह का कबूतर) में, कठोर कंकड़ मात्र खाकर भी प्रतिदिन काम का उद्वेग होता है। कहो, इसका क्या हेतु है?(भर्तृहरि, वैराग्यशतकम्, १५४)

वहाँ से वे लोग गाजीपुर गये । कुछ दिनों बाद गाजीपुर से मुझे एक पत्र मिला । प्लेग की आशंका से घर छोड़ देने के कारण बाद में वह पत्र नष्ट हो गया । उसका जो कुछ स्मरण है, बता रहा हूँ । उन्होंने लिखा था, "गोविन्द, मैं गाजीपुर पहुँच गया हूँ, पवहारी बाबा से मिलने का विशेष रूप से प्रयास कर रहा हूँ । दर्शन होने पर लगता है उनसे मुझे कुछ अमूल्य रत्न प्राप्त होंगे" आदि । इसके बाद से उनका दर्शन या पत्र आदि मुझे नहीं मिला । उनके साथ मेरा सम्पर्क केवल पन्द्रह दिनों के लिए हुआ था, और इस अल्प अवधि के दौरान ही उन्होंने मुझ पर इतनी गहरी छाप छोड़ी कि इतने वर्ष व्यतीत हो जाने के बावजूद मेरे हृदय में प्रत्येक बात अब भी नवजात-सम सजीव है । विभिन्न विषयों की स्मृति गड़मड़ हो जाती है, परन्तु उनकी याद इतनी ज्वलन्त एवं सजीव है कि आज भी वह मानो पूर्वाह्न की ही घटना जैसी प्रतिभात होती है और जब भी मैं उनके मधुर संग, स्नेहपूर्ण मुख, ज्योर्तिमय कलेवर तथा विशाल हृदय का मन ही मन चिन्तन करता हूँ, तभी अतीव पुलकित हो उठता हूँ ।

१९२१ ई. के जाड़ों में एक दिन मैं प्रायः रात भर स्वप्नावस्था में स्वामीजी के साथ विविध विषयों पर चर्चा करता रहा; यद्यपि किसी किसी विषय पर विशेष रूप से बातें हुई थीं, परन्तु अब वे सब विस्मृत हो चुकी हैं । परन्तु यह भलीभाँति स्मरण है कि उस समय मैं वैसे ही प्रफुल्ल तथा हर्षित हुआ था, जैसा कि किसी पूर्व-परिचित तथा अतीव प्रिय व्यक्ति का सहसा आगमन होने से होता है । भोर में उठकर मैं सोचने लगा – लगता है स्वामीजी का जन्मोत्सव सन्निकट है और पिछली रात उन्होंने मुझे इसी विषय में प्रेरित तथा प्रबोधित किया है । इस सन्दर्भ में मैंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया ।

सुबह देखा तो ब्रह्मवादिन् क्लब का हरेन्द्रनाथ दत्त उपस्थित है । उसे देखकर मैंने हँसते हुए कहा, "तुम्हें ज्यादा परेशान होने की आवश्यकता नहीं । कल रात स्वप्न में मैंने स्वामीजी को देखा है । उत्सव के लिए जो कुछ करना होगा, वह सब मैंने ठीक कर रखा है ।" हरेन यह सुनकर थोड़ा विस्मित हुआ और विशेष आनन्द व्यक्त करते हुए लौट गया ।

प्रयाग में चालीस वर्ष तक निवास करने के फलस्वरूप मेरा अनेक

साधु-संन्यासियों के साथ मेलजोल हुआ है और यहाँ कुम्भमेला होते रहने के कारण और भी अनेक प्रकार के साधु-महात्माओं का मैंने दर्शन किया है । फिर चिकित्सक होने के नाते भी मैं अनेक प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आया हूँ । परन्तु स्वामी विवेकानन्द के समान इतने अल्प वय में, ऐसा त्याग-वैराग्य मैंने अन्य किसी में नहीं देखा । उनके समान ओजस्वी वाणी, तीक्ष्ण दृष्टि, दूरदर्शिता, गम्भीरता, साहसपूर्ण कथन, मधुर सान्त्वना-वाणी, व्यंग-विनोद तथा हास्योद्दीपक वार्तालाप का एकत्र समावेश मुझे अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिला ।

## रामकृष्ण -वन्दना

**(मिश्र भैरवी - कहरवा)**

**हे रामकृष्ण करुणावतार, माया से अपनी लो उबार,**
**शरणागत सौंप रहा तुमको, इहलोक और परलोक भार।।**

**ना हैं मेरे जप-तप विराग, अन्तर में पूरित द्वेष-राग,**
**बस इतना ही स्वीकार करो, कतिपय शब्दों का पुष्पहार।।**

**दे कर चरणों की धूलिकणा, अपना लो अपना यंत्र बना,**
**देखो पग विचलित होवे ना, मेरे जीवन के कर्णधार।।**

**विस्मरण तुम्हारा ना होवे, तव नामरत्न भी ना खोवे,**
**निज पादपद्म की नौका में, इस भवसागर से करो पार।।**

**सब त्याग शरण में आया हूँ, चरणों में मधुप लुभाया हूँ,**
**अब तो मुझको यह बोध हुआ, तुम ही अग-जग के परम सार।।**

# स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी वीरेश्वरानन्द

(रामकृष्ण संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने निम्नोक्त संस्मरण १० फरवरी, १९७८ ई. को स्वामी ब्रह्मानन्दजी के जन्मतिथि के अवसर पर रामकृष्ण मिशन, बम्बई में सुनाए थे । इसका अनुलेखन आंग्ल मासिक 'वेदान्त केसरी' के फरवरी, १९८४ के अंक में प्रकाशित हुआ था, वहीं से हम इसका हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत कर रहे हैं । - सं.)

मैं यहाँ पर कोई सुनियोजित व्याख्यान नहीं दूँगा । स्वामी ब्रह्मानन्दजी के जीवन की जो घटनाएँ मेरी स्मृति-भण्डार में संचित हैं, उन्हीं में से कुछ का वर्णन करूँगा । ये घटनाएँ साठ या इससे भी अधिक वर्ष पूर्व घटी थीं ।

श्रीरामकृष्ण को यदि पुस्तकालय संस्करण क.ः. जाय तो राजा महाराज उसके जेबी संस्करण थे । कई दृष्टियों से वे श्रीरामकृष्ण के ही लघु प्रतिरूप थे । उनके बीच सादृश्य इतना अधिक था कि कोई कोई उन्हें पीछे से देखकर भ्रान्तिवश श्रीरामकृष्ण ही समझ बैठते थे ।

राजा महाराज के चरित्र का खास वैशिष्ट्य यह था कि उनका मन प्राय: सर्वदा ही इस जगत से परे विचरण करता रहता था, किसी अन्य राज्य में ही डूबा रहता था । बाह्य जगत् का बोध उन्हें काफी कम रहा करता था । अधिकांश समय वे चेतना के उच्चतम स्तर में निवास करते थे । कभी-कभी वे अपने सेवक को हुक्के में तम्बाकू सजा लाने का आदेश देते । सेवक जब हुक्का लाकर रखता तो उनका मन और ही कहीं रहता । थोड़ी देर बाद वे सेवक को पुनः बुलाकर पूछते – "तुमने मुझे तम्बाकू लाकर क्यों नहीं दिया ?" उन्हें बाह्य जगत का बोध बिल्कुल भी न रहता था । जब तक तम्बाकू पुनः लायी जाती, वे पुनः अपने-आप में डूब चुके होते और तम्बाकू सुलगते हुए राख हो जाती । इस प्रकार हम देखते कि उनका मन बाह्य परिवेश से यत्किंचित् ही युक्त रहता ।

यद्यपि उन्होंने कॉलेज या विश्वविद्यालय में पढ़ाई न की थी, तथापि अनेक विषयों का उन्हें अच्छा ज्ञान था । उनके मद्रास प्रवासकाल में मठ 'वाणी विलास' भवन में था और मुझे अब भी स्मरण है कि सन्ध्या-आरती के पश्चात् महाराज उस भवन के खुले बरामदे में बैठकर भक्तों के साथ वार्तालाप किया करते थे । उस समय बहुत से भक्त उनके पास आकर बैठते और महाराज उनके साथ विविध विषयों तथा यदा-कदा धर्म पर भी चर्चा किया करते । तथापि उस समय उनके पास बैठना बड़ा अच्छा लगता था और

वहाँ से उठने की इच्छा ही न होती थी । उन दिनों प्रथम विश्वयुद्ध जारी था । शिवराम अय्यर (बाद में स्वामी अविनाशानन्द) प्रतिदिन शाम को प्रायः ७-८ बजे महाराज के पास आया करते थे । वे दक्षिण भारत के एक उत्कृष्ट (आंग्ल) दैनिक 'हिन्दू' के उप सम्पादकों में एक थे । उनके आते ही महाराज पूछते – "युद्ध का क्या हाल है ? जर्मन सेना अब कहाँ तक पहुँची है ? कल तक तो वे ब्रिटिश सेना से इतने मील दूर थे, आज वे लोग कहाँ तक पहुँचे ?" वे इसी प्रकार के प्रश्न किया करते । उन्हें जर्मन व आंग्ल सेना की गतिविधियों का पूरा ज्ञान रहता था और वे शिवराम अय्यर से पूछकर नवीनतम संवाद जान लेते थे ।

फिर वहाँ एक अन्य सज्जन भी आया करते थे, जो कि किसी सहकारी बैंक के प्रबन्धक थे । राजा महाराज बहुधा उनके साथ वार्तालाप किया करते तथा प्रश्न पूछ पूछ कर बैंकिग तथा सहकारी संस्थाओं के सम्बन्ध में काफी जानकारी हासिल कर लिया करते थे । फिर एक अन्य सज्जन भी प्रतिदिन आया करते थे, जो कि सरकार के कृषि विभाग से सम्बद्ध थे । महाराज उनके साथ फूलों-फलों आदि की विविध किस्मों तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले उर्वरकों आदि के सम्बन्ध में चर्चा किया करते थे । फिर महाराज इस प्रसंग में अपने कुछ अनुभव भी बताया करते थे । यद्यपि महाराज स्वयं एक गायक न थे तथापि वे संगीत के एक उच्च कोटि के पारखी थे । वे संगीत में सुर-लय आदि समझते थे, तथा उसका रसास्वादन भी किया करते थे । इस प्रकार हम देखते है कि उन्होंने अनेक विषयों का अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया था, परन्तु किताबें पढ़कर नहीं, वरन् लोगों के साथ वार्तालाप के माध्यम से ।

श्रीरामकृष्ण की सेवा-पूजा के बारे में महाराज की तीक्ष्ण दृष्टि थी । एक दिन उन्होंने देखा कि एक ब्रह्मचारी पूजा के लिये उद्यान के सारे अच्छे फूल तोड़ ले रहा है । महाराज ने उससे कहा – " यह तुम क्या कर रहे हो ? क्या तुम पौधों को बिल्कुल पुष्पशून्य ही कर डालोगे ? तुम तो समझते हो कि श्रीरामकृष्ण सिर्फ उस कमरे में ही बैठे रहते है, कभी उद्यान में घूमने को नहीं आते । भविष्य में कदापि ऐसा न करना । पूजा के लिए थोड़े से फूल चुन लेना और बाकी उद्यान में ही छोड़ देना ।"

महाराज मठ के विविध विभागों, विशेषकर

पुष्पोद्यान,फलोद्यान,शाकोद्यान तथा गोशाले की तरफ विशेष ध्यान रखते थे। गाय-बछड़ों के चारे के बारे में वे स्वयं ही निर्देश दिया करते थे । इतना ही नहीं, वे सभी से इसी प्रकार रुचि लेने की अपेक्षा रखते थे । जब कोई मद्रास से बेलुड़ मठ आता, तो वे उससे वहाँ के पुष्पोद्यान, फलोद्यान व गायों के बारे में सविस्तार पूछा करते थे । वे पूछते, "मैंने गुरु महाराज (ठाकुर) के लिये जो गाय ले दी थी, उसने कितने बछड़े दिये ? उसका दूध कैसा है ? मैंने जो पौधा लगाया था, उसमें क्या फूल आने लगे हैं ?" उन्होंने वाराणसी से बिल्व-वृक्ष का एक पौधा लाकर मद्रास मठ में लगाया था । वे पूछा करते कि वह पौधा अब कितना बड़ा हो गया है । उन्होंने वहाँ चार आँवले के पेड़ भी लगाये थे । वे सबसे उन पौधों की बाढ़ के बारे में पूछा करते और यह भी कि उसमें अच्छे तादाद में फल लगे हैं न ! जब आँवले के ये पौधे बगीचे की चहारदीवारी के पास लगाये जा रहे थे, तो वे समीप ही खड़े थे और बोले, "इन वृक्षों के आँवले बेचकर ही तो तुम्हें सौ रुपये मिल जाया करेंगे।" सुनकर सभी लोग हँस पड़े थे। जो कोई उन्हें ठीक-ठीक सूचना न दे पाता था, उसे वे निकम्मा समझते।

देश के एक प्रान्त की चीजों का अन्य प्रान्तों से आदान-प्रदान करना महाराज को पसन्द था । वे बँगलोर तथा अन्य स्थानों से पौधे लाकर ठाकुर-सेवा के लिये बेलुड़ मठ में लगाया करते थे । इस प्रकार उन्होंने दक्षिण भारत से एक नागलिंगम का पौधा लाकर वहाँ लगाया था, जो अब एक विशाल वृक्ष में परिणत हो गया है और काफ़ी मात्रा में सुगन्धित पुष्पों से भर जाया करता है । इस प्रकार वे दूसरे स्थानों की अच्छी चीजें वहाँ लाया करते तथा बंगाल की अच्छी चीजें अन्य स्थानों को ले जाया करते । यहाँ तक कि दक्षिण भारत के जो व्यंजन उन्हें पसन्द आते, उन्हें वे बेलुड़ मठ में भी बनवाकर गुरु महाराज को निवेदन कराया करते थे । विशेषकर नीम के फूलों से बनी रसम उन्हें बड़ी पसन्द थी ।

दक्षिण भारत में रामनाम-संकीर्तन का काफ़ी प्रचलन था, उसे उन्होंने बेलुड़ मठ में प्रारम्भ कराया । उसके साथ (गोस्वामी) तुलसीदासजी द्वारा रचित कुछ श्लोकों का योगकर, उन्होंने उसे प्रति एकादशी व रामनवमी के दिन मठ में गाने को कहा । अब तो इसे सिर्फ बेलुड़ मठ ही नहीं, वरन् रामकृष्ण संघ के सभी आश्रमों में गाया जाता है । इस प्रकार वे उत्तर भारत

अथवा दक्षिण में जहाँ कहीं भी जाते, उनके भावों का परस्पर विनिमय करा कर उत्तर व दक्षिण में निकटता लाने का प्रयास करते। एक बार उन्होंने हरिद्वार में तथा अन्य एक बार मद्रास में दुर्गापूजा कराई थी। इस प्रकार वे विभिन्न स्थानों की सर्वोत्तम चीजें संग्रह कर सारे देश में फैला देना चाहते थे।

अब मैं आप लोगों से उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में दो-चार बातें कहूँगा। एक बार जब महाराज मद्रास में थे तो स्वामी विशुद्धानन्द भी उन दिनों वहाँ स्वामी रामकृष्णानन्द[१] के सहकारी के रूप में कार्यरत थे। एक दिन राजा महाराज ने देखा कि रामकृष्णानन्दजी खर्च करने के लिये खजांची विशुद्धानन्दजी से कुछ धन ले रहे है। महाराज ने उनसे कहा, "शशि महाराज से रसीद ले लिया करना। रसीद लिये बिना उन्हें पैसे न देना।" अतः जब शशि महाराज अगली बार धन माँगने को गये तो विशुद्धानन्दजी ने कहा, "राजा महाराज ने मुझे आपसे रसीद लेने को कहा है।"

शशि महाराज बोले, "ओ हो ! ठीक है, देता हूँ।"

वहाँ पर राजा महाराज की उपस्थिति के कारण शशि महाराज काफ़ी धन व्यय कर रहे थे। उन्हें स्वयं भी इसका अनुमान न था कि वे कितना खर्च कर चुके हैं। महाराज के मद्रास से विदा होते ही उन्होंने विशुद्धानन्दजी से पूछा – "तुमने मुझे कितनी रकम दी है ?"

विशुद्धानन्दजी ने उत्तर दिया – "यही कोई दो हजार रुपये दिये होंगे।"

शशि महाराज बोले – "क्या कहा ? तुमने मुझे दो हजार रुपये दिये हैं ? इतना हरगिज नहीं हो सकता।"

विशुद्धानन्दजी ने सारी रसीदें निकालकर उनके सम्मुख रख दीं। शशी महाराज हँसते हुए बोले, "तो फिर राजा महाराज ने तुम्हें बचा लिया। उन्होंने ही तुमको मेरे से रसीदें लेकर रखने को कहा था, नहीं तो आज तुम मुश्किल में पड़ जाते। देखो, राजा महाराज ने किस प्रकार तुम्हारी रक्षा कर दी।"

उन्हीं दिनों अंग्रेजी में Inspired Talks[२] नामक पुस्तक का नया नया

---

१ स्वामी रामकृष्णानन्द जो कि शशि महाराज के नाम से भी सुपरिचित थे, श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्यों में अन्यतम थे। स्वामी विवेकानन्द के आदेश पर उन्होंने मद्रास जाकर वहाँ रामकृष्ण मठ की एक शाखा-केन्द्र की स्थापना की थी तथा उसके अध्यक्ष थे।

२. अमेरिका के सहस्रद्वीपोद्यान में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त उपदेशों का संकलन, जिसका हिन्दी अनुवाद 'देववाणी' नाम से रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित हुआ है।

प्रकाशन हुआ था । उसे समीक्षा के लिये (संवादपत्रों में) भेजना था । राजा महाराज ने शशि महाराज को उसकी एक प्रति 'बाम्बे क्रानिकल' को भी भेजने को कहा । शशि महाराज बोले – " बाम्बे क्रानिकल में भेजने से क्या लाभ ! उसे 'हिन्दू' में भेज देंगे, उतना ही पर्याप्त है ।" और वास्तव में उन्होंने वह पुस्तक बाम्बे क्रानिकल को नहीं भेजी । महाराज को यह बात अच्छी नहीं लगी, पर वे मौन रहे । इसके बाद से शशि महाराज ने देखा कि उनके महाराज के पास जाने पर वे उनकी ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते, उन्हें बुलाते नहीं और उनके प्रणाम करने पर भी कुछ नहीं बोलते । वे आश्रम में शशि महाराज की उपस्थिति से उदासीन थे । शशि महाराज को इसका कारण समझते देर न लगी। उनके बीच प्रेम-सम्बन्ध काफी गहरा था । एक दिन शशि महाराज ने उनसे कहा - "ठीक है राजा, मैंने सोचा था कि तुम बड़े महान और सत्पुरुष हो, परन्तु अब समझ में आया कि तुम्हारा दिल बड़ा छोटा है । मैं क्या तुम्हारी बराबरी का हूँ, जो तुम मुझसे लड़ोगे और नाराजगी प्रकट करोगे ? तुम्हें अपनी बराबरी के लोगों से ही झगड़ना चाहिये, न कि मुझसे । तुम अपनी इच्छा मात्र से ही तो न जाने कितने शशि तैयार कर सकते हो ।" महाराज बोले – "नहीं नहीं शशि, तुम चिन्ता मत करो - कहाँ, कुछ भी तो नहीं हुआ है ।"

एक बार जब शशि महाराज बेलुड़ मठ आये तो उस समय राजा महाराज ध्यान कर रहे थे । उन दिनों मद्रास मेल (प्रातः) लगभग १० बजे हावड़ा पहुँचा करती थी । शशि महाराज को मठ पहुँचते लगभग ११ बज चुके थे, परन्तु राजा महाराज तब भी ध्यानमग्न थे । महाराज ने अन्दर जाकर उन्हें झकझोरते हुए कहा – "तुम्हें इतना ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है," और उनको आसन से उठा दिया । सिर्फ शशि महाराज के लिये ही ऐसा कर पाना सम्भव था, अन्य कोई भी ऐसा न कर सकता था ।

भोर में चार बजे मंगल आरती होने के बाद प्रतिदिन राजा महाराज ध्यान में बैठा करते थे । वे मठ के दुमंजले पर गंगा की तरफ के बरामदे में बैठते और बाकी लोग भी उनके सामने बैठकर ध्यान करते । ध्यान के पश्चात् लगभग सात बजे तक बातचीत चलती रहती । बाबूराम महाराज[३] देखते कि सब्जी आदि काटने अभी तक कोई नहीं आया, सभी ऊपर बैठे हैं । तब वे नीचे से आकर महाराज से कहते – "अच्छा राजा, आज ठाकुर को भोग आदि

३. श्रीरामकृष्णदेव के शिष्यों में अन्यतम स्वामी प्रेमानन्द ।

नहीं दिया जायगा क्या ?" महाराज बोलते – "अरे, जाओ जाओ, बाबूराम नाराज हो रहा है ।"

किसी किसी व्यक्ति से उन्हें अरुचि हो जाती थी, मानो एलर्जी हो जाती थी । वे जब मद्रास में थे तो इसी तरह का एक व्यक्ति उनसे मिलने को बड़ा व्यग्र था और महाराज उससे परहेज कर रहे थे । फिर उस व्यक्ति का एक मित्र हमारे मिशन का भक्त था तथा उसके सचिव रामस्वामी अयंगार का घनिष्ठ मित्र था । जब कभी वह रामस्वामी के साथ आता तो महाराज उससे मिलते, परन्तु एक दिन जब रामस्वामी अयंगार ने बताया कि उनका वह मित्र आया है, तो महाराज बोले – "आज मेरी तबीयत थोड़ी खराब है । उसे किसी अन्य दिन आने को कहो ।" अतः रामस्वामी अयंगार ने जाकर उसे वही बात कह दी । उस व्यक्ति के चले जाने के बाद तुरन्त ही एक अन्य गाड़ी मठ में आकर रुकी और आश्चर्य की बात कि उसमें वही व्यक्ति सवार था, जिससे राजा महाराज को परहेज था । उस व्यक्ति ने आते ही अपने मित्र के बारे में पूछा – "क्या मि. अमुक यहाँ हैं ?" रामस्वामी अयंगार ने उत्तर दिया – " वे आये तो थे, पर अभी अभी चले गये ।" वह व्यक्ति निराश होकर लौटा । सम्भवतः दोनों ने मिलकर योजना बनाई थी कि दोनों एक साथ ही मठ में पहुँचेंगे और राजा महाराज के साथ हिला हुआ वह भक्त अपने इस मित्र को भी उनके पास ले जायेगा; तथा इस प्रकार महाराज उसे टाल न सकेंगे । परन्तु लगता है महाराज को पहले ही पूर्वाभास मिल चुका था, अतः उन्होंने उस भक्त को मिलने से मना कर दिया, पहले उन्होंने उसे कभी इन्कार नहीं किया था । इस प्रकार महाराज ने उनकी योजना पर पानी फेर दिया । उस दिन को छोड़ बाकी सभी दिन भक्त आकर उनसे घनिष्ठतापूर्वक घुला-मिला करता था ।

एक अन्य समय महाराज इलाहाबाद के मठ में निवास कर रहे थे । महाराज ने दूर से एक व्यक्ति को आश्रम की ओर आते हुए देखा, जिसे वे नापसन्द करते थे । अतः वे भीतर जाकर बिस्तर पर लेट गये और सेवक को बोले – " मैं बुखार से काँप रहा हूँ, मुझे कम्बल उढ़ा दो और दबाकर रखो ।" सेवक के कम्बल से ढँक देने पर भी वे काँप रहे थे । उनका पूरा शरीर ऐसा काँप रहा था, मानो उन्हें मलेरिया बुखार हुआ हो । सेवक ने बाहर आकर महाराज से मिलने आये हुए उस व्यक्ति से कहा – "आज आप उनसे न मिल

सकेंगे, वे बीमार हैं ।" अतः वह व्यक्ति उल्टे पाँव लौट गया । तदुपरान्त महाराज ने पूछा – "क्या वह भक्त चला गया ?" जैसे ही उन्हें बताया गया कि वह भक्त जा चुका है, उनका बुखार उतर गया, वे उठ बैठे और हुक्का लाने का आदेश दिया । यह अपने आपमें एक रहस्य ही है कि कैसे वे अचानक बीमार पड़ गये, उन्हें बुखार चढ़ आया, दो कम्बलों से ढँकने के बावजूद उनका शरीर काँपता रहा और कैसे वे पुनः स्वस्थ हो उठे । परन्तु यह बात भी सत्य है कि महाराज उसके आगमन मात्र से अस्वस्थ हो उठे थे और उसके जाते ही स्वस्थ हो गये ।

जब वे वाराणसी में थे, तो वहाँ पर बाहर के एक मठ में एक भण्डारा हुआ । वहाँ के एक स्वामीजी उस समष्टि[४] भण्डारे के निमन्त्रण नगर के सभी मठों में वितरित करते हुए हमारे रामकृष्ण अद्वैत आश्रम में भी आये और स्थानीय आश्रमाध्यक्ष से पूछा – "आपके यहाँ कितने टिकट लगेंगे ।" सामान्यतया वहाँ सात-आठ टिकटों की आवश्यकता हुआ करती थी, परन्तु उस समय राजा महाराज की उपस्थिति के कारण वहाँ अनेक साधु आये हुए थे । अतः अध्यक्ष के पचास टिकट माँगने पर वे स्वामीजी विस्मय में आकर पूछ बैठे – "आपके यहाँ इतने साधु हैं ।" अध्यक्ष महाराज ने उत्तर दिया – "निश्चय ही ।" वे स्वामीजी पचास टिकट देकर चले गये ।

नियत दिन पर स्थानीय आश्रमाध्यक्ष ने सभी साधुओं को भण्डारे में जाने को कहा, परन्तु उनमें से अधिकांश लोग राजी नहीं हुए । महाराज की उपस्थिति के कारण वे सभी भण्डारे में न जाकर उन्हीं के सान्निध्य में समय बिताना चाहते थे । इस पर अध्यक्ष स्वामीजी बड़े मुश्किल में पड़े और उन्होंने जाकर महाराज से कहा – "यहाँ पर इतने साधु हैं, इस कारण मैंने पचास टिकट ले लिये थे । परन्तु सभी जाने से इन्कार कर रहे हैं और मैं किसी को भी भेजने में सफल नहीं हो सका । अतः मैं बड़ी समस्या में पड़ गया हूँ ।" महाराज ने कहा – "ठीक है, तुम घण्टी बजाओ ।" महाराज जब कभी दोनों आश्रम के साधुओं को एकत्र बुलाना चाहते थे, उस समय घण्टी बजा दी जाती थी । अतः घण्टी बजने पर सभी लोग आकर महाराज के कमरे के नीचे के बरामदे में समवेत हुए । वहाँ खड़े महाराज ने कहा – " सभी लाइन में खड़े होकर पंक्ति बना लो ।" सबके पंक्तिबद्ध हो जाने पर वे पुनः बोले – "अब

४. जिसमें कि सभी आश्रमों के सारे साधुओं को आमन्त्रित किया जाता है ।

क, दो, तीन, गिनो ।" फिर सबने उनके निर्देशानुसार गणना शुरू की । गिनती जब पचास तक पहुँची तो उन्होंने आदेश दिया – "रुक जाओ ! दाहिने मुड़ो ! मार्च करो ! भण्डारे में जाओ ।" अतः वे पचास लोग भण्डारा खाने को गये । ऐसे मामलों में महाराज बड़े ही विनोदप्रिय थे ।

महाराज के जन्म-दिवस पर उन्हें फूल-मालाओं तथा पुष्प-मुकुट आदि से बड़ी सुन्दरता के साथ सजाया गया था । दूसरे दिन उन्होंने हमें आदेश दिया कि हम वह सब ले जाकर स्वामी शुद्धानन्द को सजायें और उन्हें घेर कर कीर्तन करें । शुद्धानन्दजी उस समय आंगन में बैठे हुए थे । हमने सब कुछ ले जाकर उन्हें सजाया और खोल-करताल आदि के साथ कीर्तन गाते हुए उनके चारों ओर नाचने लगे । तब महाराज धीरे धीरे नीचे उतरे और वहाँ चल रही लीला देखकर मन्द हास्य के साथ निकट से होकर चले गये । इस प्रकार के मनोविनोद करना उन्हें प्रिय था ।

एक बार मद्रास में एक व्यक्ति ठाकुर को भोग देने के लिये एक थाल में तरह तरह की मिठाइयाँ सजाकर शशि महाराज के पास ले आया । शशि महाराज वह थाल लेकर महाराज के पास गये और बोले – "राजा, खा लो ।" राजा महाराज बोले – " मेरी तबीयत अच्छी नहीं है । पेट में गड़बड़ है, कल से ही साबूदाना ले रहा हूँ – यह सब जानकर भी तुम मुझसे ये गरिष्ठ चीजें खाने को कह रहे हो ।" शशि महाराज बोले – "राजा, तुम नहीं खाओगे । ठाकुर ही तुम्हारे माध्यम से खायेंगे । अतः स्वीकार कर लो ।" इस पर राजा महाराज ने खाना शुरू किया और उसका तीन-चौथाई हिस्सा समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें कुछ न हुआ ।

महाराज जब दक्षिण-भारत में आये थे, तो शशि महाराज उन्हें वहाँ के विविध मन्दिरों में ले गये, जिनमें मदुरा का मन्दिर भी एक है । दक्षिण भारत में ऐसी प्रथा है कि वहाँ के मन्दिरों के गर्भगृह में विग्रह के समीप पुजारी को छोड़ और किसी को प्रवेश नहीं करने दिया जाता । शशि महाराज राजा महाराज को अन्दर ले जाना चाहते थे । शशि महाराज को मालूम था कि अन्दर जाने पर उनकी जाति पूछी जायगी और मुश्किल की बात तो यह थी कि महाराज कायस्थ कुल में जन्मे थे । अतः शशि महाराज – "आलवार ! आलवार !" कहते हुए राजा महाराज को अन्दर ले गये । दक्षिण में वैष्णव

तथा शैव सम्प्रदाय के अनेक सन्त-महात्मा हुए हैं, जिनमें वैष्णव सन्तों को आलवार तथा शैव सन्तों को नायनार कहते है । अतः जब वे – "आलवार, आलवार !" कहते हुए महाराज को अन्दर ले गये (दोनों ही थोड़े स्थूलकाय थे), तो कोई बाधक न हुआ । उन्होंने महाराज को जगन्माता के विग्रह के सम्मुख ले जाकर खड़ा कर दिया और अन्दर खड़ा पुजारी यह सब देखता हुआ, महाराज की ओर टकटकी लगाये चित्रलिखा-सा खड़ा रह गया । तो इस प्रकार शशि महाराज उन्हें मन्दिर के भीतर ले गये थे ।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, वाराणसी में महाराज ने देखा कि रामनाम-संकीर्तन के समय एक वृद्ध व्यक्ति सबके पहले ही आकर बैठ जाते हैं और समाप्ति पर सबसे अन्त में वापस लौटते हैं । महाराज जान गये थे कि वे महावीर हनुमानजी ही हैं । अतः उस दिन के बाद से उन्होंने महावीरजी के लिये एक और आसन लगवाने की व्यवस्था कर दी ।

तिरुपति मन्दिर में जाकर उन्होंने सब दर्शन आदि किये । उनके साथ रामू था । उन्होंने रामू से पूछा – "यह किसका मन्दिर है ।" रामू ने बताया कि यह श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित विष्णु-मन्दिर है। राजा महाराज बोले – "पर समझ में नहीं आता, मुझे क्यों जगदम्बा का दर्शन हुआ, विष्णु का नहीं । इसका क्या तात्पर्य है ? ऐसा क्यों हुआ ?" रामू ने वहाँ पूछताछ की, तो पता चला कि तिरुपति में मूलतः देवी का मन्दिर था और वहाँ की पूजा-पद्धति से भी ऐसा प्रतीत होता था कि पहले वहाँ मूल विग्रह जगदम्बा का रहा होगा । यहाँ तक कि पुजारी भी वहाँ समवेत लोगों के समक्ष अपनी स्वीकृति देते हुए बोला – "हाँ, यह पहले माँ का ही मन्दिर था । रामनुज ने इसे विष्णु-मन्दिर में परिवर्तित कर दिया ।" तो इतिहास ऐसा है । भारतवर्ष के मन्दिर मानो किलों के समान हैं, जिनके देवता बदलते रहते है और ये एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय को हस्तान्तरित होते रहते हैं । यही है हमारी सांस्कृतिक उन्नति का इतिहास और राजा महाराज को अपने दर्शन में मालूम हो गया कि मूलतः यह जगदम्बा का मन्दिर है ।

स्वामीजी के देहत्याग के बाद श्री माताजी[५] कई वर्षों से बेलुड़ मठ नहीं आई थीं । अतः एक दिन राजा महाराज ने उनसे मठ में आकर चरणधूलि दे जाने का अनुरोध किया । मुझे ठीक-ठीक पता नहीं, पर किसी किसी का

५ श्रीरामकृष्णदेव की लीला-सहधर्मिणी, श्रीमाँ सारदादेवी ।

कहना है कि महाराज ने मठ के दक्षिणी द्वार से लेकर मन्दिर तक माँ के स्वागत की व्यापक व्यवस्था की थी । उन दिनों वही मुख्यद्वार था और वहीं पर उन्होंने माताजी का भव्य स्वागत किया । वहाँ से वे ऊपर मन्दिर में गईं और तदुपरान्त महापुरुष महाराज[६] के कमरे में गईं । आप में से बहुत से लोग बेलुड़ मठ हो आये हैं और आपको स्मरण होगा कि महापुरुष महाराज के कमरे की बड़ी खिड़की के पास एक छोटा सा बरामदा है । पहले वह बरामदा नहीं था, उसका निर्माण बाद में महापुरुष महाराज की सुविधा के लिये हुआ था । माँ कमरे में जाकर उस दरवाजे के आकार की खिड़की के समीप बैठीं और वहाँ से मठ के प्रांगण में हो रहा कीर्तन देखने लगीं । थोड़ी देर बाद वहाँ नृत्य शुरू हुआ, जिसमें महाराज भी नाच रहे थे । भाव के आवेग में महाराज अपने आपको सँभाल न पाते थे और उनके गिर जाने का अन्देशा था । अतः बाबूराम महाराज[७] सहारा देकर उन्हें अन्दर ले आये और स्वामीजी के कमरे के पश्चिम की ओर के कमरे[८] के ठीक नीचे के कमरे में उन्हें लिटा दिया । काफ़ी देर तक जब उनकी चेतना न लौटी तो किसी ने जाकर माताजी को इसकी सूचना दी । माँ ने आकर उनकी छाती स्पर्श की और वे होश में आ गये । किसी किसी का कहना है कि माताजी के प्रसाद खिलाने पर उनकी संज्ञा धीरे-धीरे लौट आई थी । अस्तु, माताजी ने कहा – "नृत्य करते हुए राखाल का समाधि में चले जाना कोई विस्मय की बात नहीं है, क्योंकि उसके पीछे ही मैंने ठाकुर को भी नाचते हुए देखा था ।"

हमारे एक स्वामीजी काफ़ी दिनों तक ब्यूनोस आयरस (अर्जेन्टीना) में रहे थे । अब उनका देहावसान हो चुका है । महाराज के वाराणसी प्रवासकाल में वे भी वहीं थे । उनका नाम था – पशुपति महाराज । एक दिन महाराज ने पूछा – "पशुपति, क्या तुमने तिलभाण्डेश्वर का दर्शन किया है ।" पहले तो उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया । वहाँ के एक शिव-मन्दिर में तिलभाण्डेश्वर नाम का एक बहुत बड़ा शिवलिंग है और ये सज्जन बड़े ही स्थूलकाय थे । इसीलिये उहोंने कहा – "क्या तुमने तिलभाण्डेश्वर का दर्शन किया है ।" और सभी लोग हँसने लगे। फिर पशुपति को भी बात समझ में आ गई और वे भी हँसने लगे । इस पर महाराज बोले – "मन्दबुद्धि ।"

---

६. स्वामी शिवानन्द ७. स्वामी प्रेमानन्द

८. जिसमें कि सूर्य महाराज (स्वामी निर्वाणानन्दजी) निवास करते थे ।

# सत्संग और उसका महत्व - २

*स्वामी यतीश्वरानन्द*

(स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे। उनका 'Meditation and Spiritnal Life' ग्रन्थ साधना-क्षेत्र में मार्गदर्शन करनेवाली एक अप्रतिम कृति है । उसी के एक अत्यन्त उपयोगी अध्याय के उत्तरार्ध का अनुवाद हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं; अनुवादक है स्वामी ब्रह्मेशानन्द, जो सम्प्रति रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी में कार्यरत हैं। - सं.)

## दूसरों की निन्दा न करो

साधक सभी से बिना विचारे मिल-जुल नहीं सकता, लेकिन निन्दावाद कभी नहीं होना चाहिए । अपवित्र लोगों की निन्दा कर अहमन्यता के भाव को बढ़ाना नहीं चाहिए । "मैं तुमसे पवित्र हूँ" – यह भाव सचमुच बुरा है और हमें अति-साहसी और लापरवाह बना देता हैं । लेकिन आध्यात्मिक साधक को अपवित्र लोगों तथा अपवित्र स्पन्दनों से अपनी रक्षा करने के लिए सतर्क रहना चाहिए । जब तक हम काफी प्रगति नहीं कर लेते तथा दूसरों को परिवर्तित करने की पर्याप्त आध्यात्मिक शक्ति अर्जित नहीं कर लेते, तब तक बुरे लोगों से मिलना हमारे लिए बिल्कुल भी निरापद नहीं है । निश्चय ही, परमात्मा सभ्री प्राणियों में हैं, लेकिन उनके कुछ रूप हमारी वर्तमान परिस्थिति में हमारे लिए भयरहित नहीं हैं । परमात्मा के उन रूपों को दूर से ही प्रणाम करना चाहिए ।

अच्छा, यदि कभी बुरे लोगों की संगत से बचा न जा सके, तो क्या करना चाहिए ? उनके प्रति उपेक्षा या घृणा नहीं दिखानी चाहिए । पूर्ण सजग रहो और अपने भीतर एक प्रबल मानसिक अवरोध पैदा करो । आन्तरिक ढाल से अपनी रक्षा करो । प्रबल आत्म-निरीक्षण करो और अशुभ प्रभावों को अपने भीतर स्थायी डेरा जमाने न देने का प्रयत्न करो । सच्चा आध्यात्मिक साधक सदा विचार करता है । यह उसकी आदत बन गयी है । तुम्हें सदा परमात्मा की ओर दौड़ने की मनःस्थिति में रहना चाहिए । कंगारू-शिशु के दृष्टान्त का अनुसरण करो । भय की आशंका होते ही कंगारू-शिशु माँ की थैली में कूदकर निश्चिन्त हो जाता है । इसी तरह हमें भी खतरे के समय परमात्मा की बाँहों में दौड़ना सीख लेना चाहिए ।

## अहंकार की बाधा

हम जितना ही लोगों को तथा उनकी नीचता, लोलुपता, कुटिलता और कामुकता को जानने लगते हैं, उतना ही सभी की साधुता का हमारा छिछला आशावाद कम होता जाता है। तब हमारे निराशावादी अथवा दोषान्वेषी होने का भय रहता है। यह एक बड़ा खतरा है। पर हमारा सौभाग्य है कि इस जगत में बहुत से सज्जन, साधु प्रवृत्ति और आध्यात्मिक लोग भी हैं। हमें उनकी संगत करनी चाहिए। आध्यात्मिक लोगों को एक दूसरे का संग करना चाहिए, विशेषकर प्रारम्भिक दिनों में। आध्यात्मिक पथ में सहयात्रियों के साथ विचार-विनिमय करना आवश्यक है। यही नहीं, हमें सन्तों द्वारा अपने को संशोधित भी करवाना चाहिए। दूसरों द्वारा भूल सुधारना हमें अच्छा नहीं लगता, लेकिन हम स्वयं अपनी सभी कमजोरियाँ खोज नहीं सकते। जब दूसरे लोग हमारी गलतियाँ बतायें, तो उन्हें सही दृष्टिकोण से स्वीकार कर लेना चाहिये।

अहंकार आध्यात्मिक जीवन की एक महान बाधा है। सन्तों के संग में रहने पर ही हमें अनुभव होगा कि हम कितने अहंकारी हैं। साधुसंग अहंकार की महान औषधि है। इसीलिए भारत में सन्तों को महान आदर प्रदान किया गया है। हिन्दू पुराण साधुसंग की प्रशंसा से परिपूर्ण हैं। जिन्हें सिद्ध महात्मा की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे ही इसका महत्व समझ सकते हैं।

कभी कभी अपनी आध्यात्मिक प्रगति के दौरान हममें एक प्रकार की अहितकर अन्तर्मुखता आ सकती है। इसे साधुसंग के द्वारा दूर रखना चाहिए। जब हमें निराशा आये, जब परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करना कठिन प्रतीत हो, तब आध्यात्मिक भावापन्न लोगों का संग और उनसे वार्तालाप बहुत सहायक होते हैं। अस्वस्थ अन्तर्मुखी वृत्ति के लोग आध्यात्मिक लोगों से भी दूर रहना चाहते हैं और अस्वस्थ बहिर्मुखी वृत्ति वाले लोग सन्तों का संग केवल गप्पें लगाने और समय बिताने के लिए करते हैं। संतुलित स्वाभाववाले पवित्र आध्यात्मिक साधकों के संग में आनन्द प्राप्त करते हैं, उनसे आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते हैं और अपने विश्वास और आध्यात्मिक-स्पृहा की वृद्धि करते हैं। श्रीरामकृष्ण सदा अपने शिष्यों को एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

सन्तों की संगत करते हुए भी हमें याद रखना चाहिए, कि मानवी सम्पर्क के पीछे एक दैवी सम्पर्क है, दैवी सम्बन्ध है । हमें जानना चाहिए, कि सभी में परमात्मा निवास करते हैं, जो हम सभी को जोड़नेवाली कड़ी हैं । हमें सदा परमात्मा के माध्यम से दूसरों से सम्पर्क करना चाहिए । श्रीरामकृष्ण का अपने शिष्यों के प्रति अगाध प्रेम था, उन्होंने अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्र से कहा था, "मैं तुझसे प्रेम करता हूँ, क्योंकि मैं तुझमें नारायण को देखता हूँ ।" उनका शारीरिक आसक्ति से रहित दैवी सम्बन्ध था ।

### अपने गुरु के प्रति दृष्टिकोण

किसी सिद्ध महापुरुष से मार्गदर्शन प्राप्त करनेवाले सचमुच भाग्यशाली हैं । लेकिन गुरु के सम्पर्क में आना और उनसे कुछ निर्देश प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है । उनकी शिक्षा का खूब निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए । लेकिन उनसे अत्यधिक भावनात्मक लगाव नहीं होना चाहिए और उनके बाहरी रूप में आसक्ति भी नहीं होनी चाहिए । एक सच्चे आचार्य चाहते हैं कि उनके शिष्य परमात्मा को उनसे भी अधिक प्रेम करें और उनको केवल परमात्मा के यंत्र के रूप में देखें । सत्य का उद्घाटन करनेवाले वास्तविक गुरु हमारे हृदय में हैं और वे स्वयं परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हैं । उनका सन्देश सामान्यतः किसी व्यक्ति के माध्यम से आता है और वे भी गुरु कहलाते हैं । अतः परमात्मा को कभी कभी परमगुरु कहा जाता है । हमें बाह्य गुरु से अधिक अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए, बल्कि आन्तरिक गुरु, अन्तर्यामी परमात्मा, अपनी आत्मा की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर उनसे ज्ञान और प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । तुम अपने इष्टदेवता को, (परमात्मा का जो रूप तुम्हें सबसे अधिक रुचिकर हो) सभी गुरुओं के परमगुरु के रूप में देख सकते हो ।

गुरु और शिष्य दोनों को यथासम्भव अवैयक्तिक होने का प्रयत्न करना चाहिए । यह तब सम्भव होता है, जब गुरु शिष्य में परमात्मा को देखने और शिष्य गुरु में परमात्मा को अनुभव करने का प्रयत्न करता है। दूसरे को व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि परमात्म-सत्ता की एक अभिव्यक्ति के रूप में तथा स्वयं को भी उसी रूप में सोचने का प्रयत्न करना चाहिए । यह व्यावहारिक वेदान्त का प्रारम्भ है और कालान्तर में यह आदर्श सभी वस्तुओं तथा सभी प्राणियों को अंगीकार कर लेता है ।

परमात्मा मेरे पास भक्तों के रूप में आते हैं और मुझे उनमें उनके व्यक्तित्व से अधिक परमात्मा को देखने का प्रयत्न करना चाहिए । शिष्य को भी सन्देशवाहक (गुरु) में तथा स्वयं में भी परमात्म-सत्ता को पहचानना चाहिए । तभी आध्यात्मिक उपदेश फलप्रद होता है और सभी में परमात्मा की सत्ता का अनुभव सम्भव होता है ।...

### सिद्ध महापुरुषों की कृपा

साधुसंग से हमारे सुप्त शुभ संस्कार जागते हैं तथा बुरे संस्कार दबते हैं । श्रीमद्भागवत की प्रसिद्ध उक्ति है –

> **नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।**
> **ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।। १०/४८/३१**
> **भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।**
> **तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ।। १/१३/१०**

– साधु-संत सबसे महान पावनकर्ता हैं। पवित्र जल इत्यादि से जीव को पवित्र होने में काफी समय लगता है, लेकिन साधुसंग तत्काल पवित्र कर देता है। और ये साधु-संत अपने हृदयस्थ परमात्मा के कारण तीर्थों को तीर्थ कर देते हैं।

भागवत में यह भी कहा गया है कि वृन्दावन की गोपियाँ पहले श्रीकृष्ण के दिव्य-स्वरूप के बारे में अनभिज्ञ थीं । वे उनके शारीरिक रूप से आकृष्ट होकर उनकी प्रियतम के रूप में कामना करती थीं । लेकिन इस दिव्य ग्वाले की संगत से उनमें महान परिवर्तन उपस्थित हुआ । कामुकता त्यागकर वे श्रीकृष्ण से विशुद्ध प्रेम करने लगीं और उनकी कृपा से कालान्तर में उन्हें आध्यात्मिक साक्षात्कार प्राप्त हुआ ।

यदि किसी सिद्ध महापुरुष का संग प्राप्त हो तो समझो कि तुम पर प्रभु की कृपा हुई है । यह कृपा किसी भी समय जा सकती है और सम्भवतः सदा के लिए । तुममें से किसी को सम्भवतः दूसरा अवसर ही न मिले । विवेक चूड़ामणि में कहा गया है कि मनुष्य जन्म, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का संग अत्यन्त दुर्लभ है और भगवत्कृपा के बिना ये नहीं प्राप्त होते ।

सिद्ध महापुरुषों का संग अमूल्य, लेकिन दुष्प्राप्य है । इन महापुरुषों के असीम प्रेम को तुम नहीं जानते । हमने स्वयं श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों को

निरन्तर हमारी समस्याओं के समाधान के लिये व्यग्र होते देखा है कि कैसे वे हमारी सहायता करें, कैसे हमें सही मार्ग पर लावें। ऐसे प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं। यह अद्भुत है। कोई भी उसका ऋण चुका नहीं सकता। वह सदा अदत्त या बकाया रहता है। केवल यही प्रेम है – ऐसा प्रेम जिसमें सौदेबाजी नहीं है, जो अपने लिए कुछ नहीं चाहता, जो केवल देता भर है, जो लेना नहीं जानता ।

एक दिन श्रीरामकृष्ण ने एक धनी व्यक्ति को नरेन्द्र (विवेकानन्द) की सहायता करने को कहा, क्योंकि वे बड़ी कठिनाई में थे तथा उनके परिवार को खाने के लिए कुछ नहीं था । इस पर नरेन्द्र असन्तुष्ट हुए और उन्होंने अपने गुरु से पूछा, "मेरी व्यक्तिगत बातों के बारे में आप दूसरों से क्यों कहते हैं ?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "बेटा, क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारे लिए मैं घर घर जाकर भिक्षा माँग सकता हूँ ?" यही है सच्चा प्रेम और इसे हमने अपने साधना-काल में स्वयं श्रीरामकृष्ण के सभी शिष्यों में देखा है । धन्य है ऐसा प्रेम ! इस प्रेम में तथा प्रेम कहलाने वाले सांसारिक सम्बन्धों में, जो वस्तुतः किसी न किसी प्रकार का स्वार्थ ही है, के बीच महान अन्तर है । सच्चा प्रेम बिल्कुल भिन्न वस्तु है । सिद्ध महापुरुषों के सम्पर्क में आए बिना इसे तुम कभी नहीं समझ सकते ।

परमात्मा सभी की अन्तर्यामी आत्मा हैं, लेकिन हमें इसकी सबोध अनुभूति होनी चाहिये तथा उनके सीधे सम्पर्क में आना चाहिए । तब उनकी शक्ति हमारे माध्यम से काम करती है । सिद्ध पुरुषों में यही होता है । वे दूसरों पर महान प्रभाव विस्तार कर सकते है, जो सामान्य व्यक्ति कर ही नहीं सकते । श्रीरामकृष्ण ने जब नरेन्द्र को स्पर्श किया, तो युवक नरेन्द्र को तत्काल अतीन्द्रिय अनुभूति हुई । बाद में नरेन्द्र ने भी स्वामी विवेकानन्द के रूप में, दूसरों में ऐसे रूपान्तरण किये । जब उन्होंने मद्रास के एक युवा गणित-प्राचार्य किड़ी को स्पर्श किया तो वह तत्काल परिवर्तित हो गया । उसके नास्तिक विचार विलुप्त हो गये और वह स्वामीजी तथा वेदान्त का पक्का अनुयायी बन गया । ये सन्त पावर हाऊस से संयुक्त जीवन्त बिजली के तार की तरह हैं । वे सदा परमात्मा के साथ सबोध सम्पर्क में रहते हैं । उनका व्यष्टि व्यक्तित्व सदा परमात्मा के साथ संयुक्त रहता है । बिजली के तार, जिसमें बिजली संचरित हो रही है, को छूने से हमें जोरदार झटका लगता है । इन पवित्र आत्माओं को स्पर्श करने पर हम उनमें सदा विद्यमान परमात्मा को स्पर्श करते हैं । ईसामसीह के इस कथन का यही अर्थ है – "और जो मुझे

देखता है, वह उसे देखता है, जिसने मुझे भेजा है ।"

अनन्त परमात्मा ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये सन्तों के देह-मन को मानो एक नहर बनाया है । जो व्यक्ति किसी सन्त के सम्पर्क में आकर उनसे, प्रापणीय प्राप्त करता है, ग्रहण करता है, वह परमात्मा के सम्पर्क में भी आता है । लेकिन ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति में ग्रहण करने की, उस सम्पर्क का अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए, अन्यथा जैसा श्रीरामकृष्ण कहा करते थे – "संन्यासी का कमण्डलु उसके साथ तीर्थों को जाता है, लेकिन अपनी कड़वाहट नहीं त्यागता ।" सन्तों के निकट जाते समय, उनके आशीर्वाद को स्वीकार करने के लिए सही मनोभाव होना चाहिए । परमात्मा हमें साधुसंग प्रदान कर सकते हैं, लेकिन यदि हमारा मन ग्रहण करने के लिये उन्मुक्त न हो, तो हमें कुछ भी लाभ नहीं होगा । सन्तों की संगत का उपयोग करना तुम्हें सीखना चाहिए । सन्तों में पूर्ण विश्वास स्थापित करके अपनी समस्यायें उनके समक्ष रखने पर वे तुम्हारे लिये जो उचित होगा, करेंगे । वे तुम्हें सही मार्ग से ले जायेंगे । लेकिन इसके लिये तुम्हारा विश्वास पूर्ण होना चाहिए । तुम्हें संशयालु नहीं होना चाहिए ।

### अपने इष्ट देवता का संग

यदि परमात्मा के साथ सदा तादात्म्य बनाये रख सको, तो किसी साधुसंग की आवश्यकता नहीं होगी । अन्यथा आध्यात्मिक प्रगति के लिये साधुसंग अत्यधिक आवश्यक है ।

लेकिन यदि साधुसंग का अवसर न मिले, तो क्या किया जाय ? जिस ईश्वरीय-विग्रह का तुम ध्यान करते हो, अपने उन इष्ट-देवता का संग करो । अपने इष्ट से वार्तालाप करना सीखो । जब कभी सत्संग की आवश्यकता महसूस हो, परमात्मा का चिन्तन और उनके नाम का जप करो । वे हमारी शक्ति हैं तथा उनके बिना हम कुछ नहीं हैं । वे हमारी आत्मा की भी आत्मा हैं । इन अन्तर्यामी परमात्मा से सम्पर्क बनाये रखने का प्रयत्न करो । यात्रा करते समय इष्ट देवता को अपने हृदय में बिठाकर अपने साथ ले जाओ । अपनी य़ात्रा में उन्हें अपने साथ रखो, ताकि वे सभी विपदाओं से तुम्हारी रक्षा कर सकें और तुम जहाँ कहीं भी रहो, तुम्हारे हृदय को शान्ति से पूर्ण कर सकें । किसी भी परिस्थिति में उन्हें न भूलो ।

बहुत से लोगों को अकेले रहने से स्वाभाविक भय रहता है। उन्हें सदा ही किसी न किसी प्रकार के संग की आवश्यकता महसूस होती है। लोग दूसरों से बातें करने को व्यग्र रहते है। अहंकार – विचारों, स्मृतियों और भावनाओं का एक जटिल समूह है, अतः वह किसी प्रकार का सम्बल चाहता है। सामान्यतः लोग अहंकार को दूसरों के सहारे बनाये रखते हैं। लेकिन जो लोग अन्तर से अपने व्यक्तित्व के एकीकरण में सफल हुए हैं, उन्हें ऐसे बाह्य सम्बलों की आवश्यकता नहीं होती। उनके व्यक्तित्व का भार-केन्द्र पूर्णतः भीतर रहता है। उच्चतर आत्मा/परमात्मा मानव की जानकारी में श्रेष्ठतम एकीकरणकारी शक्ति है। अपने शान्तिपूर्ण अस्तित्व के लिए इस या उस आदमी के पास दौड़ना आवश्यक नहीं है।

अकेले शान्ति से रहो । एकान्त में ही तुम परमात्मा के संग का स्पष्टतर अनुभव करोगे । परमात्मा के साथ अकेले रहो। अन्तर्यामी परमात्मा हम सभी के संग के लिये पर्याप्त हैं। एक प्रसिद्ध संस्कृत श्लोक में कहा गया है –

**त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।**
**त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।**

अर्थात् – तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो तुम्हीं हो बन्धु, सखा तुम्हीं हो। तुम्हीं हो विद्या, धन भी तुम्हीं हो; हे देव, मेरे सर्वस्व तुम्हीं हो।

बुद्ध के उपदेश का स्मरण करो – "गैण्डे की तरह एकाकी और स्वच्छन्द विचरण करो ।" श्रीमद्भागवत की उद्धव गीता में यह बात एक युवती की सरल कहानी के माध्यम से कही गयी है, जिसे अपने घर कुछ पुरुष अतिथियों की अभ्यर्थना करनी पड़ी थी । पकाने के लिए चावल तैयार नहीं था, अतः वह धान कूटने लगी । लेकिन उसकी कलाइयों की चूड़ियाँ बहुत आवाज करने लगीं, जिससे उसने सोचा कि इससे परिवार की दरिद्रता प्रकट हो जायगी । अतः उसने एक एक करके चूड़ियाँ उतार दीं, जब तक कि दोनों हाथों पर केवल एक एक ही रह गयीं । एक परिव्राजक अवधूत ने यह सब देखकर निम्न शिक्षा प्राप्त की –

**वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ।**
**एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ।। ११/९/१०**

– अर्थात बहुत से लोगों के साथ रहने पर कलह होता है, दो लोगों में भी

वार्ता की सम्भावना है । अतः कुमारी के कंकण की तरह अकेले रहना चाहिए ।

जब कभी तुम अकेले हो, तो निम्नोक्त भजन, जो श्रीरामकृष्ण को अत्यन्त प्रिय था, अपने आप गाओ –

> **नाथ तुम ही सर्वस्व हमार, प्राणाधार जीवन-सार ।**
> **तुम बिन नाहिं अपना, तीनों लोक मँझार ।।**
>
> **सुख-शांति तुम्हीं सहाय-संबल, सम्पद वैभव ज्ञान बुद्धि-बल ।**
> **तुम्हीं वास-गृह विश्रांति-स्थल, स्वजन मित्र, परिवार ।।**
>
> **तुम इहकाल, तुम्हीं परकाल, स्वर्ग-मोक्ष तुम ही जग-पाल ।**
> **तुम्हीं शास्त्र गुरु, भक्त-कल्प-तरु, तुम चिर-सुख-आगार ।।**
>
> **तुम ही साधन, तुम्हीं साध्य हो, सृजनहार परम-आराध्य हो ।**
> **दण्ड-दात पितु मात स्नेहमयी, भवजलधि कर्णधार ।।** [३]

## स्वामी तुरीयानन्द के उपदेश

– ५२ –

बहुत से पुण्यों के फलस्वरूप इस मानव देह की प्राप्ति होती है । नरदेह मिलने पर ही एक बार मुक्ति का द्वार खुल जाता है । ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर भी यदि मुक्ति के लिये प्रयास न किया जाय, तो फिर कब ऐसा सुयोग होगा, कौन जाने ? अतएव इसी जन्म में चैतन्य हो, इसके लिए सभी प्रकार से प्रयास करना उचित है । शास्त्र में यही बात कही गयी है –

> **महता पुण्यपुंजेन क्रीतोयं कायनौस्त्वया ।**
> **पारं दुःखोदधेर्गन्तुं तर यावन्न भिद्यते ।।** [१]

और भी कहा है –

> **यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।**
> **गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ।।** [२]

---

१. दुःखरूपी समुद्र को पार करने के लिए, बहुत से पुण्यों का फलरूपी मूल्य चुकाकर, तुमने यह देह नौका खरीदी है – नष्ट होने के पहले ही इसका सदुपयोग कर लो ।

२. खुले हुए मुक्ति के द्वारस्वरूप मानवजन्म को प्राप्त करके भी जो लोग पक्षी के समान गृह में आसक्त होते हैं, उन्हें पण्डितगण 'आरूढच्युत' अर्थात उच्च अवस्था से पतित कहते हैं । (श्रीमद्भागवत, ११/७/७४)

आसक्ति – धनजनगृहादि में अथवा अपने शरीर में यह आसक्ति ही, मुक्तिद्वार तक पहुँचनेवाले मनुष्य को भी पुनः अधःपतित कर देती है। इसीलिए सब कुछ छोड़कर एकमात्र भगवान के पादपद्मों में ही आसक्ति रखनी चाहिए। भगवान में ही रति, मति और प्रीति रखने से निस्तार हो सकता है, दूसरा कोई भी उपाय नहीं।

प्रभु तो अत्यन्त दयालु हैं। उनकी ओर एक कदम बढ़ाने पर वे सौ कदम – हजार कदम बढ़ आते हैं। यह बिल्कुल सत्य बात है, करके देखने की चीज़ है, मुख से बोलने की नहीं। यदि कोई मन-प्राण को एक कर सम्पूर्ण हृदय से एक बार भी कह सके कि प्रभो, मैं तुम्हारे चरणों में शरण लेता हूँ, मेरा दूसरा कोई भी सहारा नहीं है, तो प्रभु उसे अवश्य ही ग्रहण करेंगे, इसमें दो राय नहीं। कहना होगा और समझना होगा –

**त्वमेव माता च पिता, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**
**त्वमेय विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।**[३]

ऐसा करने पर क्या प्रभु बिना स्वीकार किए रह सकते हैं? इसीलिए तो भगवान चैतन्यदेव ने कहा है – "एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।"[४] अर्थात – हे प्रभो, यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि तुम्हारी इतनी दया होने पर भी तुम्हारे प्रति मेरा अनुराग नहीं हुआ। अनुराग होना चाहिए – अनुराग, आकर्षण – तभी तो होगा। प्रभो! आकर्षण दो, अनुराग दो – कहकर प्रार्थना करनी होगी, तभी तो वे देंगे। प्रार्थना – खूब प्रार्थना करो, प्राणपण से प्रार्थना करो। प्रभु प्रसन्न होंगे। उनके प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता, प्रेम-भक्ति से हृदय परिपूर्ण हो जाता है और जन्म सफल हो जाता है। तब "उसके लिये इन्द्रादि की सम्पत्ति भी तुच्छ हो जाती है, जो माँ का ध्यान करता है और श्यामा यदि मुड़कर देखे तो वह परम-आनन्द के सागर में उतराता है;"[५] – इस कथन का रसास्वादन किया जा सकेगा।

३. प्रपन्नगीता ४. शिक्षाष्टकम् ५. मूल बँगला भजन का भावार्थ

## रामकृष्ण मिशन के वार्षिक प्रतिवेदन का सार-संक्षेप

रामकृष्ण मिशन की ८५वीं वार्षिक आम बैठक १८ दिसम्बर १९९४, को अपराह्न में ३.३० बजे बेलुड मठ में सम्पन्न हुई। रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज के सभापतित्व में इस सभा की कार्यवाही हुई। मिशन की प्रबन्ध-समिति ने १९९३-९४ के प्रतिवेदन की संक्षिप्त रूपरेखा जो सदस्यों के सामने प्रस्तुत की, वह इस प्रकार है –

उपरोक्त काल के दौरान विकास कार्यों में लिमड़ी (गुजरात) में नये केन्द्र की स्थापना, राँची (बिहार) में स्वास्थ्य-निवास तथा विशाखापत्तनम में आदिवासियों के लिए चल-चिकित्सालय का उद्घाटन विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त चेरापुजी (मेघालय) में आदिवासी सस्कृति का संग्रहालय, नरोत्तम नगर (अरुणाचल प्र.) में कम्प्यूटर विभाग, रॉची शाखा में कुकुरमुत्ता उत्पादन प्रशिक्षण केन्द्र तथा मिट्टी परीक्षा प्रशिक्षण प्रयोगशाला आदि का भी शुभारम्भ हुआ।

मिशन के विभिन्न क्रिया-कलापों का विहगावलोकन करें तो इसने देश के ८ राज्यों में व्यापक पैमाने पर राहत एव पुनर्वास के कार्य किये, जिन पर लगभग १.३० करोड़ खर्च हुए। इनमें विशेष उल्लेखनीय है महाराष्ट्र के लातूर जिले में चल रही पुनर्वास योजना। यहाँ १६१ भूकम्प-प्रतिरोधी मकान निर्माण के विभिन्न चरणों में हैं। निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, वृद्ध एव निराश्रितों को आथिंक सहायता आदि कल्याण कार्यों में १.५९ करोड़ रुपये व्यय हुए। ९ अस्पतालों तथा ८७ चिकित्सालयों के माध्यम से ४६ लाख से भी अधिक रोगियों की सेवा हुई तथा इस मद में १०.२६ करोड़ रुपये खर्च किये गये।

मनुष्य-निर्माणकारी शिक्षा के आदर्श पर चल रही हमारी शिक्षा-संस्थाओं ने अत्यन्त उत्कृष्ट परिणाम प्रदर्शित किये। विधार्थियों का कुल संख्या लगभग २ लाख रही, जिनमें ७८००० छात्राऍं थी और इस विभाग पर कुल खर्च ३२ करोड़ से भी अधिक आया। मिशन को ग्रामीण तथा आदिवासी परियोजनाओं पर भी ३.६२ करोड़ का खर्च हुआ।

बेलुड मठ में स्थित मुख्यालय के अतिरिक्त भारत तथा विदेशों में रामकृष्ण मिशन तथा मठ के कुल ८२ तथा ७७ केन्द्र कार्यरत थे।

*स्वामी आत्मस्थानन्द*

**महासचिव**